गुरुपूर्णिमा विशेषांक

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

जुलाई १९९६

8/-

● डूबो अपने आपमें...

● अपने रक्षक आप बनो

● श्रद्धा और सावधानी से ईश्वर-दर्शन

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

वर्ष : ७
अंक : ४३

अपने शुभ संकल्प व आध्यात्मिक स्पंदनों से भूमि को पावन करते हुए पूज्यश्री।

भेटासी आश्रम (गुजरात)

जब गर्मी बढ़ जाती है तब छाछ ही साथ निभाती है। अकोला (महाराष्ट्र) में साधकों द्वारा नि:शुल्क छाछ-वितरण सेवा।

डीसा समिति द्वारा नि:शुल्क छाछ-वितरण सेवा।

पूज्यश्री के प्रागट्य महोत्सव पर विभिन्न समितियों द्वारा बच्चों में प्रसाद-वितरण।

वर्ष : ७
अंक : ४३
९ जुलाई १९९६

सम्पादक : क. रा.
प्रे. खो.

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भू
(१) वार्षिक : रू
(२) आजीवन : रू

विदेशों में
(१) वार्षिक : US
(२) आजीवन : US

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त से
संत श्री आसारामज
साबरमती, अहमदा
फोन : (०७९) ७५

प्रकाशक और मुद्रक : व
श्री योग वेदान्त सेवा स
संत श्री आसारामजी अ
साबरमती, अहमदाबाद-
विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाख
राणीप, अहमदाबाद में छ

Subject to Ahm

भिन्न समितियों द्वारा
तरण। ◆

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ७
अंक : ४३
९ जुलाई १९९६

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५ ने
विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाखली, अहमदाबाद, भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अहमदाबाद में छपाकर प्रकाशित किया।

गुरु में जब तक भगवद्बुद्धि नहीं की जाती, तब तक संसार-सागर से पार नहीं हुआ जा सकता। गुरु में मनुष्यबुद्धि होना ही पाप है। गुरु और भगवान में बिल्कुल भेद नहीं है यही मानना कल्याणकारी है। - श्री उड़िया बाबा

प्रस्तुत है...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गु...रु...पू...न...म...

गुरुज्ञान के प्रकाश से, मिटा भेद भरम अब सारा ।
अज्ञान अंधेरा मिट गया, हुआ है अंतर उजियारा ।
व्यापक सर्व में है सदा, फिर भी है सबसे न्यारा ।
दिव्य दृष्टि से जान ले, सच्चिदानन्दघन प्यारा ॥
रूप नाम मिथ्या सभी, अस्ति भाति प्रिय है सार ।
सत्य स्वरूप आतम अमर, 'साक्षी' सर्व आधार ।
काया माया से परे, 'निरंजन' है निराकार ।
भवनिधि तारणहार बन, प्रभु आये बन साकार ॥
पूर्व पुन्य संचित हुए मिले सद्गुरु संत सुजान ।
आशा तृष्णा मिट गई मिला ज्ञान हरि का ध्यान ।
भेद भरम संशय मिटा, हुआ परम कल्याण ।
राग-द्वेष सब मिट गया, जाग उठा इन्सान ॥
नम्रता सद्भावना, गुरु में दृढ़ विश्वास ।
घट-घट में साहिब बसे कर ईश्वर का अहसास ।
दूर नहीं दिल से कभी सदा है तेरे पास ।
ऐ मोक्ष मंजिल के राही, हो न तू कभी निराश ॥
मन वचन और कर्म से, बुरा ना कोई देख ।
हर नूर में तेरा नूर है, 'साक्षी' एक ही एक ।
सत्यनिष्ठ ऐ कर्मवीर, जाग्रत कर ले निज विवेक ।
पुरुषार्थ से कर सदा, जीवन में कुछ नेक ॥

- जानकी चंदनानी, अहमदाबाद ।

गुरुजी मोहे जल्दी ले लो बुलाय

जनम-जनम से भटकत हूँ मैं
नहीं सूझे और उपाय ।
पाँव बँधे पाथर अति भारी,
मोसे और चला नहीं जाय ।
बीस औ साल दिवाली देखी
अंधियारा नाहीं जाय ।
मन मोरा उजियारा ढूँढ़े प्रभु
ज्योति देवो जलाय ॥
गुरुजी मोहे जल्दी ले लो बुलाय...

हर पल अँखियाँ देखन चाहे
जो झलक गयो दिखलाय ।
नैनन नीर बहत है स्वामी
जिह्वा कछु कहा न जाय ।
या तो आओ कुटी हमारी
या महल अपने लेहु बुलाय ।
पुत्र-पिता-भाई बन हारे अब
शिष्य आपनु लेहु बनाय ॥
गुरुजी मोहे जल्दी ले लो बुलाय...

कर्महीन मैं जनम-जनम कौ
अब तो आपै होहु सहाय ।
हौ नामी औ अन्तर्यामी,
बिगरी देवो बनाय ।
तड़फत हूँ जस जल बिन मीना
कउनो करो और उपाय ।
भगत-जगत बिच डोर न टूटे
अब तो मोहे लेहु अपनाय ॥
गुरुजी मोहे जल्दी ले लो बुलाय....

- आनन्द प्रकाश सिंह, मुम्बई

- पूज्यपाद

सद्गुरु व

सात समंदर की
धरती सब कागव

'सातों महास
के समस्त वनों व
सम्पूर्ण पृथ्वी को
का गुणगान लिख
सद्गुरु की
गुरुओं की म
गा रहे हैं और ग
का कोई अंत न
नहीं । स्वयं भगवा
की महिमा का ग
भगवान श्रीराम,
भी जब मनुष्य रू
पृथ्वी पर अवतरि
वे भी स्वात्मानुभव
के द्वार पर गये थे
पाने को ।
किन शब्दो
सद्गुरुओं का आद
महाभारत एवं ब्रह्मर
भगवान वेदव्यासज
किया जाये ? किन
से प्रवाहित, जीव
वर्णन करें ? अष्टा

हे
लो बुलाय
भटकत हूँ मैं
झे और उपाय ।
अति भारी,
ला नहीं जाय ।
दिवाली देखी
रा नाहीं जाय ।
रा ढूँढ़े प्रभु
न देवो जलाय ॥
ी ले लो बुलाय...
देखन चाहे
गयो दिखलाय ।
है स्वामी
कहा न जाय ।
टी हमारी
पने लेहु बुलाय ।
पन हारे अब
नु लेहु बनाय ॥
ी ले लो बुलाय...
न-जनम कौ
ापै होहु सहाय ।
न्तर्यामी,
ारी देवो बनाय ।
जल बिन मीना
रो और उपाय ।
डोर न टूटे
ह लेहु अपनाय ॥
ी ले लो बुलाय....
ाश सिंह, मुम्बई

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सद्‌गुरु की महिमा लाबयान है

सात समंदर की मसि करौं, लेखनी सब वनराई ।
धरती सब कागद करौं, गुरु गुन लिखा न जाई ॥

'सातों महासागरों की स्याही बना दी जाये, पृथ्वी के समस्त वनों की लेखनी (कलम) बना दी जाये एवं सम्पूर्ण पृथ्वी को कागज बना दिया जाये तब भी गुरु का गुणगान लिखा नहीं जा सकता ।'

सद्‌गुरु की महिमा ऐसी लाबयान है ।

गुरुओं की महिमा अनेकों ऋषि-मुनियों ने गाई, गा रहे हैं और गाते ही रहेंगे फिर भी उनकी महिमा का कोई अंत नहीं, कोई पार नहीं। स्वयं भगवान ने भी गुरुओं की महिमा का गान किया है । भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि भी जब मनुष्य रूप धारण करके पृथ्वी पर अवतरित हुए थे तब वे भी स्वात्मानुभव से तृप्त गुरुओं के द्वार पर गये थे उस दुर्लभ आत्मतत्त्व का ज्ञान पाने को ।

'अनेक जन्मों में किये हुए पुण्यों से ऐसे महागुरु (सद्‌गुरु) प्राप्त होते हैं । उनको प्राप्त कर शिष्य पुन: संसार-बंधन में नहीं बँधता अर्थात् मुक्त हो जाता है ।'

किन शब्दों में हम उन ब्रह्मवेत्ताओं का, सद्‌गुरुओं का आदर करें ? अठारह पुराणों, श्रीमद्भागवत, महाभारत एवं ब्रह्मसूत्र जैसे दिव्य ग्रंथों की रचना करनेवाले भगवान वेदव्यासजी की महिमा का किन शब्दों में बयान किया जाये ? किन शब्दों में भगवान दत्तात्रेय के श्रीमुख से प्रवाहित, जीवन्मुक्ति देनेवाले अमृत-उपदेश का वर्णन करें ? अष्टावक्र मुनि की सहज अवस्था से स्फुरित वह उपदेश कि जिससे राजा जनक घोड़े के रकाब में पैर डालते-डालते ज्ञातज्ञेय हो गये, उनका किन शब्दों में बयान करें ? है ऐसा कोई मत या मजहब दुनिया में कि जिससे घोड़े के रकाब में पैर डालते-डालते जीव ब्रह्म हो जाये ? अष्टावक्र मुनि की करुणा-कृपा से कुछ ही समय में राजा जनक को उस सोहं समाधि का अनुभव हो गया क्योंकि अष्टावक्र मुनि पूर्णता को प्राप्त ब्रह्मवेत्ता महापुरुष थे और जनक भी पूर्ण तैयार पात्र थे । ऐसे ही पवित्र महापुरुषों की अनुकम्पा व उनके पुण्य-प्रताप से पृथ्वी पावन होती रही है । 'श्रीगुरुगीता' में भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं :

बहुजन्मकृतात् पुण्याल्लभ्यतेऽसौ महागुरुः ।
लब्ध्वाऽमुं न पुनर्याति शिष्यः संसारबन्धनम् ॥

'अनेक जन्मों में किये हुए पुण्यों से ऐसे महागुरु (सद्‌गुरु) प्राप्त होते हैं । उनको प्राप्त कर शिष्य पुन: संसार-बंधन में नहीं बँधता अर्थात् मुक्त हो जाता है ।'

कैसी दिव्य महिमा है ऐसे आत्मानुभव से तृप्त महापुरुषों की !

आज तक तुमने दुनिया का जो कुछ भी जाना है वह आत्मा-परमात्मा के ज्ञान के आगे दो कौड़ी का भी नहीं है । वह सब मृत्यु के एक झटके में अनजाना हो जायेगा । तुमने जो कुछ भी पाया है वह सब मृत्योपरांत पराया हो जायेगा लेकिन सद्‌गुरु तो दिल में छुपे हुए दिलबर का ही दीदार करा देते हैं । ऐसे समर्थ सद्‌गुरुओं की दीक्षा जब हमें मिल जाती है तो जीवन की आधी साधना तो ऐसे ही पूरी हो जाती है । कबीरजी ने भी कहा है :

तीरथ नहाये एक फल संत मिले फल चार ।
सद्‌गुरु मिले अनंत फल कहत कबीर विचार ॥

गुरु तो बहुत मिल सकते हैं लेकिन सद्‌गुरु इस धरती पर कभी-कभी, कहीं-कहीं मिल पाते हैं । विश्व में प्रत्येक लाख आदमी में अगर एक आदमी को सद्‌गुरुतत्त्व का बोध हो जाये तो यह पृथ्वी पाँच मिनट में ही स्वर्ग में बदल जायेगी ।

ऐसे ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं की पूजा का जो पावन दिन है वही गुरुपूनम है । सद्गुरु की पूजा, अर्थात् ध्येय की पूजा है, अपनी माँग की पूजा है । मनुष्य जाति में जब तक ईश्वरीय माँग बनी रहेगी, असली ध्येय बना रहेगा तब तक सद्गुरुओं की पूजा होती रहेगी । विवेकानंदजी ने कहा है :

''हजारों-हजारों, मंदिर-मस्जिद रसातल में चले जायें, हजारों-हजारों धर्मग्रंथ रसातल में चले जायें, सारी धरती की धर्मव्यवस्था रसातल में चली जाये फिर भी जब तक धरती पर एक भी सद्गुरु हैं और एक सत्शिष्य है तब तक धर्म फिर से उभरेगा, क्योंकि सद्गुरु के हृदय से सत्शिष्य के कल्याण के लिए जो वचन निकलेंगे वे ही धर्मग्रंथ बन जायेंगे, सत्शास्त्र बन जायेंगे ।''

'श्रीगुरुगीता' में तो भगवान शिव ने यहाँ तक कहा है :

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः ।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ॥

'हे देवी ! कल्पपर्यन्त के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ.... ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं ।

जिसने एक बार भी गुरु को पूर्ण संतुष्ट कर लिया तो महाराज ! फिर उसे किसीको रिझाना बाकी नहीं रहता, कुछ पाना बाकी नहीं रहता, कहीं जाना बाकी नहीं रहता, गुरु ऐसे तत्त्व में उसे जगा देते हैं ।

इसीलिए गुरु को भगवान से भी बड़ा माना गया है । क्यों ? किन्हीं संत ने लिखा है : ''भगवान ने मुझे जन्म दिया तो जीव-भाव से जन्म दिया, माता-पिता ने मुझे पुत्र-भाव से जन्म दिया लेकिन जब सद्गुरु ने जन्म दिया तो परमात्म-भाव से जन्म दिया । ईश्वर ने मुझे जीव बनाया, माता-पिता ने बेटा बनाया लेकिन सद्गुरु ने तो मुझे परमात्म-स्वरूप ही बना दिया ।''

ऐसे श्री सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में हमारे कोटि-कोटि प्रणाम हैं...

❀

ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

गुरुप्रसाद का आदर

देवशर्मा नामक ब्राह्मण ने गुरुकुल में पढ़-लिखकर, घर लौटते समय गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करके दक्षिणा रखी । तब गुरु ने कहा : ''बेटा ! तूने गुरु-आश्रम में बहुत सेवा की । तेरी दक्षिणा मुझे नहीं चाहिए । तू गरीब ब्राह्मण है ।''

देवशर्मा : ''गुरुदेव ! कुछ-न-कुछ तो देने दीजिए ! मेरा कर्त्तव्य निभाने के लिए ही सही, कुछ तो आपके चरणों में रखने दीजिए !''

शिष्य की श्रद्धा को देखकर गुरुदेव ने दक्षिणा स्वीकार कर ली और कुछ प्रसाद देना चाहा । दूसरा तो उनके पास कुछ था नहीं अतः प्रसन्न होकर अपनी छाती का एक बाल तोड़कर दे दिया और बोले : ''ले जा, बेटा ! खाली हाथ क्यों जायेगा ?''

गुरु जब प्रसाद देते हैं तो उसमें उनका संकल्प होता है । देवशर्मा समझदार था । उसने बड़े ही आदर से गुरुदेव का प्रसाद ग्रहण किया एवं घर जाकर एक चाँदी की डिब्बी में रखकर

> *लाख आदमी में अगर एक आदमी को सद्गुरुतत्त्व का बोध हो जाये तो यह पृथ्वी पाँच मिनट में ही स्वर्ग में बदल जायेगी ।*

रोज उसकी पूजा-अर्चना करने लगा ।

देवशर्मा ब्राह्मण था, पढ़कर शास्त्री बना था एवं कर्मकाण्डी था अत: उसने कर्मकाण्ड द्वारा अपनी आजीविका शुरू की । जिनका मुहूर्त निकालता, शादी कराता उन्हें लाभ ही लाभ होता । धीरे-धीरे गाँव के सब ब्राह्मणों का धंधा मंद होने लगा और देवशर्मा के ग्राहक बढ़ते गये । ऐसा करते-करते देवशर्मा धन-वैभव से संपन्न होता गया तब एक कर्मकाण्डी विद्वान युवक ने कहा :

> *"ईश्वर ने मुझे जीव बनाया, माता-पिता ने बेटा बनाया लेकिन सद्‌गुरु ने तो मुझे परमात्म-स्वरूप ही बना दिया ।"*

"देवशर्मा ! तुम जितना पढ़े हो उससे तो मैं ज्यादा पढ़ा हुआ हूँ, दूसरे कई ब्राह्मण भी ज्यादा पढ़े हुए हैं फिर भी हम सब केवल मक्खियाँ उड़ाते रहते हैं और तुम मालामाल होते जा रहे हो । तुम्हारे पास समय नहीं होता तो भी लोग तुम्हारा इंतजार करते हैं एवं तुम्हारे कथनानुसार ही अपना समय निर्धारित करते हैं । आखिर इसका रहस्य क्या है ?"

> *"जब मैं गुरुकुल से पढ़कर लौट रहा था उस समय मेरे गुरुदेव ने प्रसन्न होकर अपनी छाती का एक बाल मुझे प्रसाद स्वरूप दिया था । वह बाल... मैं तो समझता हूँ मेरे गुरुदेव की कृपा ही है । मैंने चाँदी की डिब्बी में उस बाल को रखा है ।*

देवशर्मा ने बड़ी सरलता से कह दिया : "जब मैं गुरुकुल से पढ़कर लौट रहा था उस समय मेरे गुरुदेव ने प्रसन्न होकर अपनी छाती का एक बाल मुझे प्रसाद स्वरूप दिया था । वह बाल... मैं तो समझता हूँ मेरे गुरुदेव की कृपा ही है । मैंने चाँदी की डिब्बी में उस बाल को रखा है । रोज प्राणायाम-ध्यानादि के बाद उस गुरुप्रसाद का दर्शन करके फिर मैं अपने कार्य का आरंभ करता हूँ ।"

> *गुरुजी भोजन कर रहे थे । उस समय आसपास कोई दूसरा चेला न था । अत: उस ब्राह्मण ने मौका देखकर जोर से झपाटा मारा और गुरु की जटा में से बाल ले भागा ।*

पूछनेवाला वह ब्राह्मण युवक समझ गया और पहुँचा उन गुरु के पास और बोला : "गुरुजी ! गुरुजी ! हमारा धंधा बहुत मंदा चलता है । आपकी छाती का एक बाल दे दो न !"

गुरु ने कहा : "बेटा ! वह केवल बाल का चमत्कार नहीं है । उस देवशर्मा का आचरण ऐसा बढ़िया था कि मैंने प्रसन्न होकर बाल दे दिया तो उसका काम बन गया । उसने सेवा से मेरा हृदय जीत लिया था ।"

वह ब्राह्मण बोला : "मैं भी सेवा करने को तैयार हूँ । बस, आप अपनी छाती का बाल दे दीजिए ।"

गुरुजी : "नहीं देते ।"

ब्राह्मण : "मैं आपकी सेवा करूँगा" ।

यह कहकर वह ब्राह्मण वहीं रह गया और कुछ सेवा करने लगा । वह थोड़ी बहुत सेवा करता और गुरुजी से जाकर कहता : "गुरुजी ! मैंने यह काम कर डाला... वह काम कर डाला... और कोई सेवा बताइये ।" ऐसा करके गुरु का सिर खपाने लगा । तब परेशान होकर गुरुजी बोले : "मुझे तेरी सेवा की कोई जरूरत नहीं है । अब तू जा यहाँ से ।"

परंतु वह न माना । एकाध दिन और गुजारा उस ब्राह्मण ने कि शायद गुरुजी राजी हो जायें । किन्तु गुरु भला कब दिखावटी सेवा से राजी होते हैं ?

गुरु की सेवा करो तो सच्चे हृदय से । गुरु से प्रेम करो तो सरल हृदय से । नि:स्वार्थ होकर, निरहंकार होकर प्रेम करो तो गुरु के हृदय से भी वे प्रेम की निगाहें, प्रेम के आन्दोलन (परमाणु) बरसेंगे और तुम्हारे अंदर छुपा हुआ प्रेम का दरिया उमड़ पड़ेगा... तुम

निहाल हो जाओगे ।

किन्तु उस ब्राह्मण को तो इस बात का पता न था । उसे तो केवल इतना ही मालूम था कि 'छाती के बाल' के चमत्कार से देवशर्मा का धंधा चमक रहा है । उसने पुन: गुरु से बाल माँगा ।

गुरु ने इन्कार करते हुए कह दिया : "जा अब यहाँ से ।"

अब उस ब्राह्मण को हुआ कि गुरु कोई बाल-वाल देनेवाले नहीं हैं । किन्तु मैं कुछ भी करके उनका बाल जरूर ले जाऊँगा ।

दोपहर का समय था । गुरुजी भोजन कर रहे थे । उस समय आसपास कोई दूसरा चेला न था । अत: उस ब्राह्मण ने मौका देखकर जोर से झपाटा मारा और गुरु की जटा में से बाल ले भागा ।

महत्त्व वस्तु का नहीं वरन् गुरु की प्रसन्नता का है । गुरु संकल्प करके जो प्रसाद देते हैं वह सामान्य दिखती वस्तु भी बहुत बड़ा काम कर जाती है ।

गुरु ने कहा : "बेटा ! तुझे बाल से बहुत प्रेम है न, तो जा, भगवान की दया से तुझे बाल-ही-बाल मिलेंगे ।"

अब ब्राह्मण स्वप्न में भी बाल-ही-बाल देखने लगा । भोजन करने बैठे तो भोजन में भी बाल आ जाये, जो अशुद्ध माना जाता है ।

देवशर्मा को गुरु ने प्रसन्न होकर एक बाल दिया तो उसका धंधा चमक उठा जबकि इस ब्राह्मण ने धंधे में बढ़ौतरी की कामना से बाल माँगा एवं न मिलने पर छीन कर लाया तो हर जगह उसे बाल-ही-बाल मिलने लगे ।

महत्त्व वस्तु का नहीं वरन् गुरु की प्रसन्नता का है । गुरु संकल्प करके जो प्रसाद देते हैं वह सामान्य दिखती वस्तु भी बहुत बड़ा काम कर जाती है फिर वह प्रसाद चाहे कोई वस्तु हो, चाहे कोई उपदेशामृत हो ।

अत: सच्चे गुरुओं के प्रसाद का सदैव आदर करो ।

❀

गुरुकृपा से हरिकृपा

रावण की लंका में रहते हुए भी विभीषण साधु पुरुष जैसा ही जीवन जीते थे । सीताजी की खोज करते-करते हनुमानजी जब लंका में आते हैं तब उन्होंने एक कुटीर पर 'राम' नाम लिखा हुआ देखा । वे सोचते हैं कि इस कुटीर में ही शायद मुझे आराम मिलेगा । हनुमानजी कुटीर के करीब पहुँचे तो उन्हें 'राम' नाम का कीर्तन सुनाई दिया :

श्रीराम जय राम जय जय राम...

भीतर जाकर हनुमानजी कीर्तनकर्त्ता पुरुष से पूछते हैं : "आप कौन हैं, जो इस असुरपुरी में भी निर्भीक होकर प्रेम से प्रभु श्रीराम का नाम जप रहे हैं ?"

विभीषण कहते हैं : "मैं कौन हूँ यह तो मुझे पता नहीं है लेकिन इस जगत में रामनाम के सिवाय मुझे और किसीका सहारा नहीं है ।"

"मैं कौन हूँ यह तो मुझे पता नहीं है लेकिन इस जगत में रामनाम के सिवाय मुझे और किसीका सहारा नहीं है ।"

विभीषण के विचारों से प्रसन्न होकर हनुमानजी अपना परिचय देते हैं तो विभीषण की खुशी का ठिकाना ही नहीं रहता है । उनकी आँखों में खुशी के आँसू छलक आते हैं । विभीषण कहते हैं :

"मुझे अब संतोष हुआ है कि भगवान की मुझ पर विशेष कृपा है ।"

हनुमानजी पूछते हैं : "विशेष कृपा का कारण क्या है ? भगवान की विशेष कृपा कैसे हुई ?"

विभीषण कहते हैं :

अब मोहे भाव भरोस हनुमंता ।
बिनु हरिकृपा मिले नहीं संता ॥

"जब भगवान की कृपा होती है तब ही संत मिलते हैं । आप जैसे संत के दर्शन हुए हैं इसलिये भगवान की मुझ पर विशेष कृपा है, उसका मुझे विश्वास है ।"

ईश्वर की कृपा होती है तब संत मिलते हैं और

संतों की कृपा होती
की कृपा होती है
होता है ।

रामकृष्ण परमहं
तोतापुरी गुरु आये
रामकृष्ण से कहा : "
के दर्शन होते हैं,
मेरे पास से आत्मज्ञा

रामकृष्ण : "मुझे
का ज्ञान पाने की व
है ।"

तोतापुरी कहते
यह अच्छी बात है ले

है । वे कहते हैं
तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान
लेकिन माँ ! मैं तो
दर्शन करता हूँ तो अ
का फल क्या ?"

माँ काली कहती
दर्शन का फल यही
आत्मसाक्षात्कारी, ब्रह
तुझे घर बैठे ज्ञान
हैं ।"

रामायण में आत

मम दरसन
जीव पावहिं

माँ काली कहती
जा और अद्वैत वेदा

भगवान श्रीराम
की शरण गये थे । भ
गये थे ।

रिकृपा

भी विभीषण साधु
सीताजी की खोज
आते हैं तब उन्होंने
: 'राम' नाम लिखा
वे सोचते हैं कि
में ही शायद मुझे
। हनुमानजी कुटीर
हुँचे तो उन्हें 'राम'
र्तन सुनाई दिया :
राम जय जय राम...
जाकर हनुमानजी
पुरुष से पूछते हैं :
में भी निर्भीक होकर
रहे हैं ?''
हूँ यह तो मुझे पता
किन इस जगत में
सिवाय मुझे और
सहारा नहीं है ।''
के विचारों से प्रसन्न
मानजी अपना परिचय
विभीषण की खुशी
ना ही नहीं रहता
आँसू छलक आते

कि भगवान की मुझ

कृपा का कारण क्या
कैसे हुई ?''

हनुमंता ।
हीं संता ॥
है तब ही संत मिलते
हैं इसलिये भगवान
का मुझे विश्वास है ।''
ब संत मिलते हैं और

संतों की कृपा होती है तब ईश्वर मिलते हैं । इन दोनों की कृपा होती है तब अपने आत्मा का ज्ञान होता है ।

रामकृष्ण परमहंस के पास तोतापुरी गुरु आये । उन्होंने रामकृष्ण से कहा : ''तुझे माताजी के दर्शन होते हैं, फिर भी तू मेरे पास से आत्मज्ञान पा ले ।''

माँ की कृपा और गुरु की कृपा के साथ रामकृष्ण ने स्वयं पर कृपा की तब साधना के सर्वोच्च शिखर तक पहुँच पाये ।

रामकृष्ण : ''मुझे अब आत्मा का ज्ञान पाने की क्या जरूरत है ।''

तोतापुरी कहते हैं : ''माताजी के दर्शन होते हैं, यह अच्छी बात है लेकिन माताजी आते हैं, फिर चले जाते हैं और वियोग होता ही है पर एक बार भीतर के आत्मदेव को जान ले तो फिर कभी भी ईश्वर के साथ तेरा वियोग नहीं होगा ।''

ईश्वर की कृपा होती है तब संत मिलते हैं और संतों की कृपा होती है तब ईश्वर मिलते हैं । इन दोनों की कृपा होती है तब अपने आत्मा का ज्ञान होता है ।

रामकृष्ण को तोतापुरी की बात पर यकीन नहीं हुआ । वे माँ काली के मंदिर में गये और पूछा : ''माँ ! एक संत आये हैं । वे कहते हैं कि मुझसे तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान सीख ले लेकिन माँ ! मैं तो आपकी सेवा करता हूँ... आपके दर्शन करता हूँ तो आपके दर्शन का फल क्या ?''

''मेरे दर्शन का फल यही है कि आत्मसाक्षात्कारी, ब्रह्मज्ञानी गुरु तुझे घर बैठे ज्ञान देने आये हैं ।''

माँ काली कहती हैं : ''मेरे दर्शन का फल यही है कि आत्मसाक्षात्कारी, ब्रह्मज्ञानी गुरु तुझे घर बैठे ज्ञान देने आये हैं ।''

रामायण में आता है :

मम दरसन फल परम अनूपा ।
जीव पावहिं निज सहज स्वरूपा ॥

माँ काली कहती हैं : ''तू तोतापुरी गुरु की शरण जा और अद्वैत वेदान्त का ज्ञान पा ।''

भगवान श्रीराम अवतार लेकर आये फिर भी गुरु की शरण गये थे । भगवान श्रीकृष्ण भी गुरु की शरण गये थे ।

रामकृष्णदेव भी तोतापुरी गुरु के चरणों में बैठकर जीव-ब्रह्म के एकत्व का ज्ञान श्रवण करने लगे । तोतापुरी कहते हैं : ''केवल श्रवण से ही काम न चलेगा । तूने जो श्रवण किया है उसका चिंतन, मनन भी कर और अब तू ध्यान भी कर ।''

रामकृष्ण ध्यान में बैठें तो माँ के ही दर्शन होवें । तोतापुरी ने पुनः भ्रूमध्य में ध्यान करने को कहा तब दृढ़ निश्चय करके रामकृष्ण बैठे । जब ध्यान में जगदंबा के दर्शन हुए तो विवेक से मन को वहाँ से हटा दिया । उसके बाद मन को कोई अवरोध नहीं रहा । मन निर्विकल्प समाधि के आनंद में डूब गया ।

रामकृष्ण की यह स्थिति देखकर तोतापुरी को संतोष हुआ । सतत् तीन दिन तक रामकृष्ण की समाधि अवस्था रही । तोतापुरी को यह देखकर परम आश्चर्य हुआ कि जिस स्थिति की प्राप्ति के लिये उन्होंने चालीस वर्ष तक कठिन पुरुषार्थ किया, वह स्थिति रामकृष्ण को एक ही दिन में उपलब्ध हो गई और उन्होंने अद्वैत ज्ञान का अनुभव कर लिया !

माँ की कृपा और गुरु की कृपा के साथ रामकृष्ण ने स्वयं पर कृपा की तब साधना के सर्वोच्च शिखर तक पहुँच पाये । ऐसे महापुरुष की करुणा-कृपा पचानेवाले नरेन्द्र नाम के युवक ने स्वामी विवेकानंद बनकर अखिल विश्व में भारत के अद्वैत ज्ञान का प्रचार किया ।

ऐ साधक ! जिन्दगी के दिन यूँ ही बीते जा रहे हैं । तू भी खोज ले तोतापुरी जैसे, रामकृष्ण जैसे तत्त्वनिष्ठ, जीवन्मुक्त सद्गुरु को और पा ले उनसे अद्वैत की कुँजियाँ, फिर देख, तेरी उपस्थिति मात्र से हजारों बुझते दिलरूपी चिराग पुनः रोशन हो उठेंगे । ॐ आनंद... ॐ शांति... ॐ...ॐ...ॐ...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

पाश्चात्य जगत में एक अनुभवी गुरु हो गये । वे अपने शिष्यों को किसी भी प्रकार की साधना नहीं बतलाते थे । बस, केवल आश्रम में रहो और जब गुरु की दृष्टि पड़ जाय और गुरु की मौज आ जाय और कह दें : 'स्टॉप... स्टॉप...' अर्थात् रुक जाओ... आप जो भी कुछ कर रहे हैं उसी दशा में थम जाओ । सिर खुजला रहे हैं तो सिर पर ही आपको हाथ रोकना पड़ेगा और चलने को कदम बढ़ा रहे हैं तो वहीं ठहर जाना पड़ेगा, हिलना-डूलना तक नहीं ।

गुरु चाहें तो एक दिन में एक बार 'स्टॉप' कह दें या पचास बार अथवा पचास दिन में एक बार कह दें, कुछ पता नहीं । केवल आपके कानों में आवाज आ गई : 'स्टॉप...!' तो आपको रुकना पड़ेगा ।

इस 'स्टॉप' से कई लोग ऊब गये कि यह क्या ? यहाँ तो कुछ करना नहीं । केवल गुरुजी कह दें 'स्टॉप' तो पड़े रहें एक-एक घण्टा । ऐसा होता है क्या ? नये-नये लोग उनके आश्रम में आते रहते लेकिन स्थायी रूप से विरले ही टिक पाते थे । कच्चे-कच्चे तो भाग ही जाते थे । जो लोग जीवन का महत्त्व जानते थे, जीवन को उन्नत करना चाहते थे, ऐसे ही कुछ लोग रह गये ।

बारह वर्ष के बाद उन लोगों को लेकर गुरुजी वन-विहार करने निकले । एक सूखी नहर के पास गुरुजी ने अपना डेरा जमवाया । वहीं पर शिष्यों की परीक्षा भी होनी थी । कुल पचास-साठ शिष्य थे, उनमें से भी मात्र तीन शिष्य गुरुदेव की नजरों में श्रेष्ठ थे ।

जो लोग साधना के लिये गुरु आश्रम में जाते हैं, वे संयमी जीवन जीते हैं, नित्य जप, स्वाध्याय, नियम, आसन आदि करते हैं । सत्संग के विचारों का मनन एवं सुबह-शाम घूमना उनकी दिनचर्या होती है ।

प्रातःकाल की वायु जो नर सेवत सुजान ।
ताकी मुखछबि बढ़त है, बुद्धि होत बलवान ॥

सभी शिष्य प्रातःकालीन सन्ध्या-ध्यान का नियम करके टहलने गये । वे तीन शिष्य, जो गुरुजी की निगाहों में थे, सूखी नहर में जा रहे थे । गुरुजी ने तम्बू में बैठे-बैठे ही आवाज लगाई : "स्टॉप...!"

तीनों वहीं के वहीं रुक गये । गुरुदेव की अगली आज्ञा न मिलने तक उन्हें वहीं रुकना था । इतने में नहर में पानी आना शुरू हुआ । हालाँकि पानी छोड़ना पूर्वयोजित था । धीरे-धीरे पानी घुटने तक आ गया । उन्होंने सोचा कि गुरुदेव ने जब 'स्टॉप' कहा था तब तो नहर सूखी थी लेकिन अब तो पानी आ गया, अब क्या करें ? लेकिन 'स्टॉप' याने 'स्टॉप' ।

एक ओर तो गुरु की आज्ञा है पर मन इधर-उधर फिर रहा है । लेकिन श्रद्धा कहती है कि 'स्टॉप' माने पूरा ही 'स्टॉप' ।

अब कमर तक पानी आ गया । पानी के धक्के

जो लोग साधना के लिये गुरु के आश्रम में जाते हैं, वे संयमी जीवन जीते हैं, नित्य जप, स्वाध्याय, नियम, आसन आदि करते हैं । सत्संग के विचारों का मनन एवं सुबह-शाम घूमना उनकी दिनचर्या होती है ।

"बेटा ! तूने गुरु की आज्ञा का पालन किया है तो अब जल पर भी तेरी आज्ञा चलेगी और थल पर भी आज्ञा चलेगी क्योंकि मन पर तेरा नियंत्रण हो गया है ।"

से ही कुछ लोग रह
र गुरुजी बन-विहार
गुरुजी ने अपना डेरा
नी थी। कुल पचास-
ष्य गुरुदेव की नजरों
में जाते हैं, वे संयमी
नियम, आसन आदि
का मनन एवं सुबह-
ती है।
सेवत सुजान।
द्धि होत बलवान ॥
न्ध्या-ध्यान का नियम
शिष्य, जो गुरुजी की
थे, सूखी नहर में जा
गुरुजी ने तम्बू में बैठे-
आवाज लगाई :
टॉप...!''
वहीं के वहीं रुक
रुदेव की अगली आज्ञा
तक उन्हें वहीं रुकना
ने में नहर में पानी आना
हुआ। हालाँकि पानी
पूर्वयोजित था। धीरे-
ा। उन्होंने सोचा कि
ने जब 'स्टॉप' कहा था
नहर सूखी थी लेकिन
पानी आ गया, अब
? लेकिन 'स्टॉप' याने
।
ओर तो गुरु की आज्ञा
मन इधर-उधर फिर
। लेकिन श्रद्धा कहती
'स्टॉप' माने पूरा ही
गया। पानी के धक्के

भी लगने लगे और मन ने जोर मारा तो उन तीनों में से एक शिष्य तो चल पड़ा। उसने अपने आपको समझाया कि 'तन्दुरुस्त रहेंगे तो साधना करेंगे। जब शरीर ही बीमार हो जाएगा तो क्या साधना करेंगे? क्या 'स्टॉप' करेंगे?' यह सोचकर वह निकल गया लेकिन अभी भी दो शिष्य उसी स्थिति में मूर्तिवत् वहीं खड़े रहे।

अन्तरात्मा ने उसे समझाया कि 'मर जाएँगे तो मर जाएँगे। इतने जन्मों से कभी कामासक्त होकर तो कभी क्रोध के कारण, कभी लोभ-मोह में फँसकर तो कभी राग-द्वेष के कारण और कभी रोग-ग्रस्त होकर हम मरते ही तो चले आ रहे हैं। इस जन्म में यह नश्वर शरीर यदि गुरुआज्ञा का पालन करते हुए छूट भी गया तो घाटा क्या है?

नहर में पानी धीरे-धीरे बढ़ता हुआ कमर से ऊपर छाती तक आ पहुँचा। तब दूसरा शिष्य सोचता है कि : 'पहला निकल गया तो गुरुजी ने कुछ कहा नहीं। मैंने तो इतना सहन भी किया है। गुरुजी भी जानते हैं कि दो घण्टे से 'स्टॉप' में मूर्तिवत् खड़ा हूँ। अब तो खड़ा भी नहीं रहा जाता। पानी में गिर रहा हूँ।' इस प्रकार दूसरे के मन ने भी 'हाँ-ना' का सिलसिला शुरू किया और वह भी पानी से बाहर निकल गया।

तीसरा तो वहीं था। पानी बढ़ता हुआ कंधे तक आ चुका है और अब पानी धीरे-धीरे बढ़ते हुए होठों तक आ पहुँचा है। अब मन कहने लगा कि 'पानी और बढ़ा तो मर जाएँगे। लेकिन गुरुभक्ति से ओतप्रोत उसकी अन्तरात्मा ने उसे समझाया कि 'मर जाएँगे तो मर जाएँगे। इतने जन्मों से कभी कामासक्त होकर तो कभी क्रोध के कारण, कभी लोभ-मोह में फँसकर तो कभी राग-द्वेष के कारण और कभी रोग-ग्रस्त होकर हम मरते ही तो चले आ रहे हैं। इस जन्म में यह नश्वर शरीर यदि गुरुआज्ञा का पालन करते हुए छूट भी गया तो घाटा क्या है? 'स्टॉप' माने 'स्टॉप'। मूर्तिवत् खड़े ही रहो।

गुरुजी को क्या पसन्द है और क्या पसंद नहीं है, उसकी खबर शिष्य को हो जानी चाहिये। वह तदनुसार कार्य करने लग जाय तो फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नहीं रहता है। वह माया से पार होकर मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है, जीवन्मुक्त हो जाता है।

ऐसे शिष्यों का दृढ़ निश्चय होता है :

तेरी खिदमत में ऐ सद्‌गुरु
यह सिर जाए तो जाए।
मैं समझूँगा कि ये मरना
हयाते जादवाँ मेरा ॥
यही पाओगे मेहशर में
जुबाँ मेरी, बयाँ मेरा।
मैं बन्दा हूँ सदगुरु का
और गुरु का प्यार है मेरा ॥

उस सत्‌शिष्य के होठों को छूकर पानी जा रहा है तो कभी नाक तक भी आ जाता है। अब साँस लेना भी कठिन हो रहा है। मन फिर प्रलोभन देता है कि 'यहाँ से हटना नहीं है तो फिर गर्दन ऊँची करके साँस ले ले।' लेकिन वह ईमानदार शिष्य अपने मन को समझाता है कि : 'नहीं। कोई दलील नहीं। No Argument. आज्ञा माने आज्ञा।'

अब पानी नाक को छू रहा है लेकिन आज्ञा तो आज्ञा होती है और निष्ठा से गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए उसे ऐसा झटका लगा कि उसके मन और प्राण एक पल में तीसरे नेत्र में पहुँच गये और उसका तीसरा नेत्र खुल गया।

शिष्य को जब कोई दुर्लभ वस्तु मिलती है तो गुरुदेव को तत्क्षण पता लग जाता है। गुरुदेव दौड़ते हुए उसके पास आते हैं और कहते हैं : ''बेटा! तूने गुरु की आज्ञा का पालन किया है तो अब जल पर भी तेरी आज्ञा चलेगी और थल पर भी आज्ञा

चलेगी । तू यदि नक्षत्रों को आदेश देगा तो वे भी अब तेरी आज्ञा का पालन करते हुए रुक जाएँगे क्योंकि मन पर तेरा नियंत्रण हो गया है । अब तू इस जल को कहेगा कि रुक जा तो वह भी रुक जाएगा ।''

जल सूक्ष्म है और मन सूक्ष्मतर हो गया है । यही सच्ची साधना है । इसीलिये कबीरजी ने कहा होगा :

आज्ञा सम नहीं साहिब सेवा ।

एक वृद्ध गुरु थके-माँदे रात्रि को आये और शिष्य से कहा : ''जरा मेरी टाँगों पर खड़ा होकर रौंद दे तो थकान मिट जाये ।''

शिष्य रोने लगा और बोला : ''कैसा गुरु का पवित्र शरीर और उसे मैं अपने पैरों से रौंद दूँ ?''

''ओ मूर्ख ! आज्ञा का उल्लंघन करके गुरु के मुँह पर तो पैर रख ही दिया लेकिन गुरु की थकान मिटाने के लिए रौंदने की सेवा नहीं कर सकता ?''

ऐसे लोग दुराग्रही कहलाते हैं । वे अपने मन के चेले होते हैं, मन के गुलाम होते हैं । गुरुजी को क्या पसन्द है और क्या पसंद नहीं है, उसकी खबर शिष्य को हो जानी चाहिये । वह तदनुसार कार्य करने लग जाय तो फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नहीं रहता है । वह माया से पार होकर मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है, जीवन्मुक्त हो जाता है । जो मनमुख होकर अपने-आप उस परमात्मा को पाने का प्रयत्न करता है वह तो माया की जाल में फँस जाता है ।

कबीरजी कहते हैं :

चलो चलो सब कोई कहे, विरला पहुँचे कोई ।
माया और कामिनी, बीचे घाटी दोई ॥

धन की आसक्ति से या स्त्री की माया से जो बचकर निकल जाता है उसे बहुत-बहुत धन्यवाद है लेकिन फिर उसे मान-सम्मान की इच्छा, बड़ाई की इच्छा घेर लेती है । दूसरों का मान-सम्मान देखकर अपने दिल में पैदा होनेवाली जलन मनुष्य को गिरा देती है ।

धन की आसक्ति से या स्त्री की माया से जो बचकर निकल जाता है उसे बहुत-बहुत धन्यवाद है लेकिन फिर उसे मान-सम्मान की इच्छा, बड़ाई की इच्छा घेर लेती है ।

माया तजना सहज है,
सहज नारी का नेह ।
मान बड़ाई ईर्ष्या,
दुर्लभ तजना एह ॥

अपने को बड़ा मान लेना साधना में बाधक है । कुछ गुण आ गये, कुछ संयम आ गया, कुछ त्याग में सफल हो गये तो 'मैं त्यागी हूँ । मैं अपने पास कुछ नहीं रखता हूँ । मैं तो चोंगा उतारकर भी दान में दे दूँ ऐसा हूँ ।' ऐसा अहंकार करना भी साधना में अवरोधक है । माया और कामिनी- इन दो घाटियों को जो पार कर चुका, मान, बड़ाई, ईर्ष्या से भी जो बच चुका है उसे इसके सूक्ष्म अहंकार से भी सावधान रहना है । यह हमारी अपनी जवाबदारी है । यदि इतना करने में हम सफल हो गये तो ईश्वर को उसी समय प्रगट होने में कोई हर्ज नहीं है । वह तो सदा प्रगट है । हम केवल माया की घाटियों से बच निकलें और उस ईश्वर को देखने की हमारी आँख खुल जाय तो वह हाजराहजूर है ।

माया और कामिनी- इन दो घाटियों को जो पार कर चुका, मान, बड़ाई, ईर्ष्या से भी जो बच चुका है उसे इसके सूक्ष्म अहंकार से भी सावधान रहना है । यह हमारी अपनी जवाबदारी है । यदि इतना करने में हम सफल हो गये तो ईश्वर को उसी समय प्रगट होने में कोई हर्ज नहीं है । वह तो सदा प्रगट है ।

नानकजी कहते हैं :

आद सत्... जुगाद सत्... है भी सत्... नानक ! होसे भी सत् । वह सत् आदि में था, युगों से है और अभी भी है तथा रहेगा भी । आँखों की पलकें झपकाने में जितना समय लगता है, ईश्वर को प्रगट होने में इतनी

भी देर नहीं लगती है । आपमें संयम है, वृत्ति में तत्त्वज्ञान है तो वृत्ति में आरूढ़ जो चैतन्य है, वह वृत्ति का अज्ञान मिटाता है और वृत्ति का अज्ञान मिटते ही अपने स्व-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, आत्म-साक्षात्कार हो जाता है ।

तत्त्वज्ञान के श्रवण मात्र से साक्षात्कार नहीं होता । अलबत्ता, श्रवण से संभावनाएँ प्रबल होती हैं लेकिन श्रवण के साथ मनन व निदिध्यासन का सहारा लिया जावे और तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त सद्गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो तो वे दयालु तुम्हें तत्क्षण ही अपने अनुभव के महासागर में डुबकियाँ लगाने का सामर्थ्य प्रदान कर देते हैं ।

आँखों की पलकें झपकाने में जितना समय लगता है, ईश्वर को प्रगट होने में इतनी भी देर नहीं लगती है । आपमें संयम है, वृत्ति में तत्त्वज्ञान है तो वृत्ति में आरूढ़ जो चैतन्य है, वह वृत्ति का अज्ञान मिटाता है और वृत्ति का अज्ञान मिटते ही अपने स्व-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, आत्म-साक्षात्कार हो जाता है ।

सद्गुरु एक चिंगारी रखते हैं शिष्य की हथेली पर और शिष्य ज्ञान की उस चिंगारी से अपने हृदय में ज्ञान की ऊर्जा, उष्मा और ज्योति का आलोक प्रज्वलित कर लेता है । तूलिका से बनाये गये चित्र अपनी आभा खो सकते हैं लेकिन सद्गुणों की स्याही से लिखी गई इबारत कभी फीकी नहीं पड़ती और यह इबारत लिखने का काम करते हैं सद्गुरु ।

भगवान के श्रीविग्रह के दर्शन से भी भावनाएँ पवित्र होती हैं । भगवान का साकार रूप प्रकट हो जाय तो आनंद आता है, चित्त रोमांचित हो जाता है लेकिन हृदय में स्थित अन्तर्यामी ईश्वर वृत्ति में आरूढ़ होकर अज्ञान हटाकर अपने स्वरूप का अनुभव करा देता है, तब आत्म-साक्षात्कार होता है । उस हृदयस्थ [illegible] वृत्ति और उस पर [illegible] बोध की प्राप्ति करा [illegible] तब जीव अपने को [illegible] शरीर में ही सीमित न मानकर अपने सर्वव्यापक स्वरूप का अनुभव कर लेता है और सदा-सदा के लिये मुक्त हो जाता है ।

इस मुक्तिपथ में आनेवाले विघ्नों से सद्गुरु हमें बचाते हैं, हमारी रक्षा करते हैं, जिससे यात्रा सरल हो जाती है । इसलिये तुलसीदासजी ने कहा है :

गुरु बिन भवनिधि तरहिं न कोई...

🕉

(पृष्ठ १६ का शेष)

इस मार्ग पर चलते हुए अगर कदम डगमगायें, कहीं उलझ जाओ या फिसल भी जाओ तो रुको नहीं, निराश न हो वरन् ईश्वर से प्रार्थना करो कि :

असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतंगमय ।

'हे प्रभु ! हमें असत्य से बचाकर सत्य की ओर ले चलना । अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलना । मृत्यु से अमर आत्मा की ओर ले चलना ।'

जितनी श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक अंतर्यामी परमात्मा से प्रार्थना करते जाओगे, उतना वह परम उदार, करुणासागर प्रभु अपने सच्चिदानंद स्वभाव में तुम्हें जगाता जायेगा । जितने तुम आत्म-स्वभाव में जागते जाओगे उतने ही भीतर से कृतकृत्यता से भरते जाओगे और तुम आनंदस्वरूप आत्मा का अनुभव कर पाओगे, जो तुम वास्तव में हो ।

हरि ॐ... ॐ... ॐ... हरि ॐ... ॐ... ॐ...

घोड़ा अड़ा क्यों ?
पान सड़ा क्यों ?
रोटी जली क्यों ?
मन फँसा क्यों ?

इसका उत्तर आप सोचिये या 'ऋषि प्रसाद' के आनेवाले अंक ४४ का इन्तजार किजिये ।

डूबो अपने आपमें...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

शंकराचार्य अद्वैत-मत का प्रचार करते-करते काशी पहुँचे । पहली बार काशी गये थे । वहाँ काशी के पंडित मानते थे कि भगवान हमसे कहीं दूर है । भगवान और भक्त में भेद है ।

लेकिन शंकराचार्य ने कहा कि : ''भगवान एक ऐसी सत्ता है जो सर्वत्र है । भगवान का एक जगह पर होना एवं दूसरी जगह न होना, यह मानना तो भगवान की सर्वव्यापकता एवं शाश्वतता पर धब्बा लगाना है । सच्चा भक्त भगवान को केवल वैकुंठ में ही नहीं मानता । वह तो सर्वत्र भगवत्तत्त्व का ही अनुभव करता है ।''

> *भगवान का एक जगह पर होना एवं दूसरी जगह न होना, यह मानना तो भगवान की सर्व व्यापकता एवं शाश्वतता पर धब्बा लगाना है । सच्चा भक्त भगवान को केवल वैकुंठ में ही नहीं मानता । वह तो सर्वत्र भगवत्तत्त्व का ही अनुभव करता है ।*

यह शंकराचार्य का अनुभव भी था और वेदान्त का सिद्धांत भी था ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।

यह सब कुछ ब्रह्म परमात्मा ही है । पुष्पों में सुगंध उसीकी सत्ता से है । पक्षियों में किल्लोल उसीकी चेतना से है । बालक की मुस्कान यह उसीकी मेहरबानी है और माँ का वात्सल्य-भाव उसीकी सत्ता से स्फुरित होता है । जल में रस उसीकी सत्ता से है और पृथ्वी में गंध भी उसीकी सत्ता से है । सूर्य में प्रकाश उसीका है और चंद्रमा में चाँदनी और औषधियों को पुष्ट करने का सामर्थ्य उसीका है । तारों की टिमटिमाहट भी तो उसीकी है ।

नरसिंह मेहता कहते हैं :

अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्री हरि...

पंडितों ने जमकर शास्त्रार्थ किया । किन्तु शंकराचार्य के अद्वैत मत के आगे उनके सारे सिद्धान्त हल्के सिद्ध हुए और शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत ही वास्तव में सत्य सिद्ध हुआ ।

श्रीमद् आद्यशंकराचार्य जब प्रयाण कर रहे थे तब उनके शिष्यों ने कहा :

''गुरुदेव ! कोई अंतिम उपदेश तो देते जाइये ।''

आद्यशंकराचार्य ने कहा : ''मनुष्य को विवेक और वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए । संसार के तुच्छ भोगों एवं विषय-विकारों से अपने को बचाकर नित्य शाश्वत-तत्त्व का चिंतन करना चाहिए । हमेशा सत्संग करते रहना चाहिए । ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के ज्ञान को, उनके विचारों को अपने जीवन में लाने का पुरुषार्थ करना चाहिए ।''

जीवन मूल्यवान है । कहीं ऐसा न हो कि तुम जिनको अपना मानते हो वे पराये हो जायें और जो वास्तव में अपना है उसका कोई ख्याल न रहे । अपने को खोकर कहीं तुच्छ भोगों में न उलझ जाओ, विषय-विकारों एवं बाह्य आकर्षणों में न फँस जाओ इसकी सावधानी रखनी चाहिए । तत्परता से आत्मविचार में, आत्मध्यान में एवं आत्मज्ञान में लगे रहो । मृत्यु आकर तुम्हारा गला दबोच ले उसके पहले तुम अपने सोहं स्वरूप में जाग जाओ ।

संसार की नश्वरता का नित्य विचार करो कि आखिर यह सब कब तक ? अंत में तो इस देह से नाता तोड़ना ही है । अतः देह की नश्वरता का विचार करके अपने अमर आत्मतत्त्व का, राम-तत्त्व का अनुसंधान करते जाओ । क्रूर काम के

विचारों को भूलते जाओ और राम-तत्त्व के विचारों में लीन होते जाओ । भूतकाल में किये गये तुच्छ हल्के विचारों को न दुहराओ, न ही भविष्य के लिए शेखचिल्ली बनो वरन् वर्त्तमान में ही आपके रोम-रोम में रम रहे उस आत्मा-परमात्मा की चेतनता का, परमात्मा की शांति का अहसास करते जाओ ।

तत्परता से आत्मविचार में, आत्मध्यान में एवं आत्मज्ञान में लगे रहो । मृत्यु आकर तुम्हारा गला दबोच ले उसके पहले तुम अपने सोहम् स्वरूप में जाग जाओ ।

कब तक संसार-भट्ठी में अपने को तपाते रहोगे ? कब तक विषय-विकारों की आग में अपने को झुलसाते रहोगे ? कब तक मरनेवाले शरीर के संबंधों को संभालोगे ? कब तक मिटनेवाली चीजों को थामे रहोगे ? भाई ! अब तो उस अमिट आत्मा की गहराई में गोता मारो । अब तो शाश्वत् की ओर चलने का प्रयास आरंभ कर दो । उस प्रियतम के चरणों में अपने-आपको अर्पित हो जाने दो, अपने-आपको खप जाने दो उस परमात्म-प्रेम में । अपने-आपको मिट जाने दो उसकी विश्रान्ति में ।

कब तक संसार-भट्ठी में अपनेको तपाते रहोगे ? कब तक विषय-विकारों की आग में अपनेको झुलसाते रहोगे ? कब तक मरनेवाले शरीर के संबंधों को संभालोगे ?

कभी कुछ दिया, कभी कुछ लिया, इस कंजूसी से सौदा नहीं चलेगा । दे डालो अपने अहं को पूरे का पूरा । कभी हाथ दिया, कभी पैर दिया, कभी आँख दी... नहीं । अलख के विशाल उदधि में अपने-आपको पूरे का पूरा दे डालो । जैसे सागर में नाव अपने-आपको पूरा छोड़ देती है सागर और पतवार के हवाले । ऐसे ही वेद भगवान की पतवार के हवाले, परमात्मा की श्रद्धा के हवाले अपने जीवन को छोड़ दो उस विशाल महासागर में । अपने 'मैं' को छोड़ दो उस प्रियतम की पूर्ण अवस्था में ।

कब तक संकीर्णता को सजाते रहोगे ? कब तक अपने अहं को पोसते रहोगे ? कब तक इस विकारी नाम और रूप को संभालते रहोगे ? प्रेम करो तो उसी परमेश्वर से और छटपटाओ तो उसीके लिए, समर्पण भी उसीमें । बस, उसी अलख में सच्चिदानंद में, प्रेमानंद में डूबते जाओ... डूबते जाओ... डूबते जाओ....

ॐ शांति... मधुर शांति... गहरी शांति....

(पृष्ठ ३५ का शेष)

को दूर करके अपने असली स्वरूप को जान ले । उसके लिये अपना पुरुषार्थ चाहिये । जिसने पुरुषार्थ करके अपने दिल का परदा दूर नहीं किया, उसने चाहे जो किया लेकिन सारा का सारा अपने साथ अन्याय ही किया है । इसलिये अपने रक्षक आप बनो ।

ॐ शांति.... ॐ शांति.... ॐ शांति....

(पृष्ठ १९ का शेष)

संग्रह किये हुए धन को दूसरे जरूरतमंदों के उपयोग में लावें तो यह धन का सदुपयोग है । उसी तरह शरीर से सेवाकार्य करें यह शरीर का सदुपयोग है । मन को भगवान के नाम-जप में लगायें और बुद्धि को आत्मविचार में, आत्मस्वरूप के चिंतन में लगायें तो यह मन-बुद्धि का सदुपयोग है ।

प्रकृति में भी देखो तो सूर्य अहर्निश सबको प्रकाश देता है । हवाएँ जीवन देती हैं । पृथ्वी हमें और पेड़-पौधों को आधार देती है । इसीसे यज्ञमय जीवन का संदेश मिलता है । 'ईश्वर की इस सृष्टि में निमित्त बनूँ और अपना बोझा उतारूँ'-ऐसा सोचकर सत्कर्म करो और सत्यस्वरूप परमात्मा में विश्रान्ति पाते जाओ...

गुरुभक्तियोग जीवन के तमाम दुःख-दर्दों को निर्मूल करने का मार्ग बताता है ।

श्रद्धा और सावधानी से सत्यदर्शन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मन की मनसा मिट गई भरम गया सब टूट ।
गगन मंडल में घर किया काल रहा सिर कूट ॥

जब कोई पूर्ण संतत्व को उपलब्ध हो जाता है तब सब प्रकार के भ्रम मिट जाते हैं । संत बनने के लिए, संतत्व को पाने के लिए भी साधना-तपस्या करनी पड़ती है, ईश्वर में, गुरु में श्रद्धा रखनी पड़ती है । जिन लोगों के पास ईश्वर और सद्गुरुओं में श्रद्धारूपी संपत्ति है, यह उनका सौभाग्य है । किन्तु साथ में श्रद्धा का दुरुपयोग करनेवाले लोग भी बहुत होते हैं । आदमी अगर सचेत नहीं रहता तो किसी-न-किसी मान्यता में, पंथ में, संप्रदाय में फँस जाता है । अगर आपमें श्रद्धा है तो श्रद्धा के उपयोग से गुलामी बढ़ाना नहीं है, भरम बढ़ाना नहीं है वरन् गुलामी मिटाना है और अपने आत्मतत्त्व को जानना है ।

> *श्रद्धा का दुरुपयोग करनेवाले लोग भी बहुत होते हैं । आदमी अगर सचेत नहीं रहता तो किसी-न-किसी मान्यता में, पंथ में, संप्रदाय में फँस जाता है ।*

अरब में एक फकीर हो गये । उनकी अंतिम घड़ियाँ बीत रही थीं । उन्हें माननेवाले कई लोग वहाँ एकत्रित हुए थे । फकीर ने लोगों से कहा :

''देखो ! इस जीवन की आखिरी घड़ियाँ हैं । मैं आप लोगों से खास बात कहना चाहता हूँ । यह शरीर छूट जाये तब आप रोना-धोना मत । जो मरता है वह मैं नहीं हूँ और जो वास्तव में मैं हूँ वह कभी मरता नहीं है क्योंकि मैं शरीर नहीं, अमर आत्मा हूँ । मेरे जाने के बाद मेरे नाम से कोई तुम्हारी श्रद्धा का दुरुपयोग करना चाहे उससे आप सचेत रहना । अपनी समझ का ठीक उपयोग करना । मेरे 'कहलानेवाले' चेलों से बचना । मेरे भानजे-भतीजों से, सगे-संबंधी होने का दावा करनेवालों से बचना । आप सबको यह मेरी खास सूचना है ।''

> *''मेरे जाने के बाद मेरे नाम से कोई तुम्हारी श्रद्धा का दुरुपयोग करना चाहे उससे आप सचेत रहना । अपनी समझ का ठीक उपयोग करना । मेरे 'कहलानेवाले' चेलों से बचना ।''*

किसी भी क्षेत्र में जब कोई आदमी प्रसिद्ध हो जाता है तो उसके सगे-संबंधी होने का दावा करनेवाले लोग बहुत मिल जाते हैं । इसलिए इस विषय में सावधान रहने की खास जरूरत है ।

मेरे पास एक एम. एल. ए. आते थे । एक बार एक साधारण आदमी आया और कहने लगा : ''मैं उस एम. एल. ए. का बहनोई लगता हूँ ।''

जब उससे पूछा गया कि ''तुम कैसे उसके बहनोई लगते हो ?'' तब उसने कहाँ-कहाँ के संबंध बताकर अपने को एम. एल. ए. का बहनोई साबित करना चाहा लेकिन उसकी बात में कोई दम नहीं था ।

सच्चे संत-महापुरुष भी जब प्रसिद्ध हो जाते हैं तब भी ऐसा होता है । उन फकीरों के लिए तो भानजे-भतीजे कोई नहीं होते हैं । उनके लिए तो सब समान होते हैं । कोई नजदीक का या कोई दूर का नहीं होता है । सब उसी परमात्मा के हैं फिर क्या अपना और क्या पराया ? वे तो सिर पर कफन बाँधकर ईश्वर के रास्ते चल पड़ते हैं । ईश्वर के सिवाय किसीसे अपना संबंध नहीं रखते हैं ।

बच्चों का खेल नहीं है मैदाने महोब्बत,

ड़याँ हैं । मैं आप लोगों
र छूट जाये तब आप
हीं हूँ और जो वास्तव
मैं शरीर नहीं, अमर
न से कोई तुम्हारी
सचेत रहना । अपनी
कहलानेवाले' चेलों से
संबंधी होने का दावा
री खास सूचना है ।''
आदमी प्रसिद्ध हो जाता
ा दावा करनेवाले लोग
इस विषय में सावधान

आते थे । एक बार
और कहने लगा : ''मैं
एल. ए. का बहनोई
।''
उससे पूछा गया कि
ने उसके बहनोई लगते
ब उसने कहाँ-कहाँ के
ताकर अपने को एम.
ा बहनोई साबित करना
कन उसकी बात में कोई
था ।
तब प्रसिद्ध हो जाते हैं
सा होता है । उन फकीरों
तो भानजे-भतीजे कोई
हैं । उनके लिए तो
ान होते हैं । कोई
का या कोई दूर
हीं होता है । सब
मात्मा के हैं फिर क्या
और क्या पराया ? वे
पर कफन बाँधकर ईश्वर
चल पड़ते हैं । ईश्वर
बंध नहीं रखते हैं ।
मैदाने महोब्बत,

यहाँ जो भी आया सिर पर कफन बाँधकर आया है ।

सभी तो वे ईश्वर के साथ अपनी जो अभिन्न एकता है, उसका अनुभव कर लेते हैं । वे ऐसे ऊँचे पद पर पहुँच जाते हैं कि ईश्वर के अनंत सामर्थ्य का उपयोग करके दूसरों को भी ऊँचा उठा सकते हैं ।

ऐसे पहुँचे हुए संतों में, फकीरों में श्रद्धा करनेवाला तर जाता है । परन्तु केवल संत का, फकीरी का जामा पहनकर लोगों की श्रद्धा का दुरुपयोग करनेवाले भी बहुत होते हैं । इसलिए अपनी समझ का, विवेक-बुद्धि का उपयोग करके अपने को जो ठगना चाहते हों, ऐसे लोगों से बचना चाहिए ।

ईश्वर के साथ अपनी एकता का अनुभव कर लेते हैं वे ऐसे ऊँचे पद पर पहुँच जाते हैं कि ईश्वर के अनंत सामर्थ्य का उपयोग करके दूसरों को भी ऊँचा उठा सकते हैं । ऐसे पहुँचे हुए संतों में, फकीरों में श्रद्धा करनेवाला तर जाता है ।

ऐसे ही कोई बाबा थे । लोग उन्हें दादा भगवान बोलते थे । वे यहाँ भी आये थे । कहते थे कि :

''हम एक घण्टे में भगवान का साक्षात्कार करा देते हैं ।''

हमारे साधकों ने उनसे पूछा : ''किसी किसीको हो सकता है कि सबको हो सकता है ?''

वे बोले : ''सबको हो सकता है । मैंने छः हजार आदमियों को भगवान के दर्शन करा दिये हैं, साक्षात्कार करा दिया है ।''

तब साधकों ने सोचा कि एक घण्टे में साक्षात्कार हो जाता तो जप-तप, ज्ञान-ध्यान, साधना, वेद, उपनिषदों की जरूरत नहीं होती । विवेकानंद ने कहा भी है कि प्रत्येक लाख आदमियों में अगर एक व्यक्ति को साक्षात्कार हो जाए तो पृथ्वी उसी समय स्वर्ग में बदल जायेगी । छः हजार को साक्षात्कार करा दिया है, वह भी अहमदाबाद में, परन्तु कोई रौनक तो दिखती नहीं है । आप कहते हैं कि एक घण्टे में साक्षात्कार हो जाता है तो यहाँ जो है उन सबको साक्षात्कार करा दो ।

जो लोग श्रद्धालु तो हैं किन्तु अपनी समझ का उपयोग नहीं करते हैं और श्रद्धा का दुरुपयोग करनेवाले लोग मिल जाते हैं तो वे बेचारे फँस जाते हैं । उनको जगाना मेरा कर्त्तव्य है ।

योगेश्वर श्रीकृष्ण जिनके साथ रहते थे ऐसे अर्जुन को भी साक्षात्कार नहीं हुआ था । युद्ध के मैदान में श्रीकृष्ण ने उपदेश दिया और अठारह अध्याय तक उपदेश चला तब कहीं अर्जुन को ज्ञान हुआ और वह बोला :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा
त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः
करिष्ये वचनं तव ॥

एक घण्टे में साक्षात्कार करानेवाले लोगों के चक्कर में आश्रम के साधक तो क्या कुत्ता भी नहीं आएगा ।

दादा भगवान क्या करते थे ? अपने बाँयें पैर का अंगूठा बाहर रखते थे । जिसको भगवान का दर्शन करना है, साक्षात्कार करना है, उसके भ्रूमध्य में अंगूठा लगाकर 'दादा भगवान का असीम जय-जयकार हो... दादा भगवान का असीम जय-जयकार हो...' इसीका पुनरावर्तन करवाते जाते थे । जब सामनेवाला व्यक्ति 'सेल्फ हिप्नोटाइज्ड' हो जाता, तब वे अपने गले का हार उतारकर उसे पहना देते और बोलते कि 'साक्षात्कार हो गया । किसीसे कहना मत । बड़े रहस्य की बात है । जब कभी कोई दुःख आये तो इस हार के आगे प्रार्थना करना ।' ऐसा कहकर वह हार प्लास्टिक की थैली में रखकर देते ।

जब तक जन्म-मरण के चक्कर से छूटे नहीं तब तक किसी-न-किसी प्रकार का दुःख तो बना ही रहेगा । वहाँ फिर हार क्या करेगा ?

ऐसी बातों में अपनी समझ का उपयोग करना चाहिए । किसी संत-महात्मा से या किसी दादा भगवान से या चाहे कोई भी हो, मेरा किसीसे कोई विरोध नहीं है । लेकिन जो लोग श्रद्धालु तो हैं किन्तु अपनी

समझ का उपयोग नहीं करते हैं और श्रद्धा का दुरुपयोग करनेवाले लोग मिल जाते हैं तो वे बेचारे फँस जाते हैं । उनको जगाना मेरा कर्त्तव्य है ।

तत्त्ववेत्ताओं का अनुभव और वेद-उपनिषद् भी यही कहते हैं कि भगवान के दर्शन हो जायें फिर भी भगवान से यही प्रार्थना करो कि हमें तत्त्व का बोध हो जाये ।

अगर भगवान का दर्शन हो जाये तब भगवान से पूछो कि हमारा कल्याण किसमें है ? भगवान भी यही कहेंगे कि 'अपने-आपको जानो । इसीमें तुम्हारा परम कल्याण है ।' भगवान यह नहीं कहेंगे कि 'जा, तुझे हो गया साक्षात्कार ।'

भगवान भी यही कहेंगे कि 'अपने-आपको जानो । इसीमें तुम्हारा परम कल्याण है ।'

ध्रुव को भगवान विष्णु ने साक्षात् दर्शन दिये और कहा : "जा, तुझे संतों का समागम होगा और वे तुझे तत्त्वज्ञान का उपदेश देंगे ।"

वशिष्ठजी ने श्रीराम को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया और श्रीराम ने हनुमानजी को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया । श्रीकृष्ण ने भी ऋषियों के आश्रम में रहकर वेदों-उपनिषदों का अध्ययन किया था, फिर उन्होंने अर्जुन को आत्मज्ञान दिया । अगर शिष्य अधिकारी हो, उसने बहुत साधना की हो, और गुरु समर्थ हों तो एक क्षण में भी साक्षात्कार हो सकता है । किन्तु यह तो कभी-कभी, किसी खास मौके पर ही संभव हो सकता है ।

जो लोग बोलते हैं कि जिस किसीको भी एक घण्टे में साक्षात्कार करा सकते हैं वे या तो अनजान हैं या दगाबाज हैं या फिर बेवकूफ हैं ।

जो लोग बोलते हैं कि जिस किसीको भी एक घण्टे में साक्षात्कार करा सकते हैं वे या तो अनजान हैं या दगाबाज हैं या फिर बेवकूफ हैं । अगर ऐसा ही होता तो सत्य बोलने की, पवित्र जीवन जीने की, सदाचरण करने की जरूरत नहीं होती । दुनिया में जो चाहे वह एक घण्टे में साक्षात्कार कर ले तो फिर कोई अज्ञानी ही न रहे ।

विवेकानंद जैसे दृढ़ निश्चयी, दार्शनिक एवं समझदार साधक को भी कई वर्षों तक श्री रामकृष्ण के श्रीचरणों में रहकर साधना करनी पड़ी । जब गुरुकृपा और अपने-आप पर कृपा का संयोग हुआ तब आत्म-साक्षात्कार हुआ । ऐसे ही 'छू... फू...' करके साक्षात्कार हो जाता तो यह सब करने की क्या जरूरत थी ?

केवल अहमदाबाद में ही ३५-४० लाख लोगों में से ३५-४० साक्षात्कारी हो जायें, ३५-४० विवेकानंद आ जायें या ३५-४० कबीर जैसे संत आ जायें तो क्या हो सकता है तुम कल्पना कर सकते हो ? अरे ! पूरी दुनिया का नक्शा (वातावरण) बदल जाये । जो आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष होते हैं उन्हें छूकर बहनेवाली हवाएँ भी आनंद, प्रेम और शांति की खबरें फैलाती हैं ।

ईश्वर के मार्ग पर लोग चल तो पड़ते हैं किन्तु लक्ष्य तक पहुँचने के पहले ही वे या तो अपने-आप या तो दूसरों के चक्कर में आकर गुमराह हो जाते हैं । ईश्वर के भरोसे उसे पाने के लिए निकल ही पड़े तो अंत तक सावधानी बरतनी चाहिए । अपने आप को कहीं भी फँसने से बचाना चाहिए ।

आज कल खुद भगवान होने का दावा करनेवाले बहुत मिलते हैं । अतः किसीके चक्कर में न आकर आप पहले अपने भीतर जाँच करो कि 'अभी राग-द्वेष है कि चला गया ? ईर्ष्या, लोभ, मोह-ममता, काम-क्रोध, मद-अहंकार है कि चला गया ?' अंतःकरण के दोष दूर हो जायें, फिर आप किसीका मार्गदर्शन करोगे तो उनका भी उद्धार होने लगेगा । आप भीतर से शुद्ध और पवित्र होते जाओ तो आपकी हाजरी मात्र से लोग सुधरने लगेंगे, अच्छे रास्ते पर चलने लगेंगे ।

आप भी ईश्वर के रास्ते पर धैर्य सहित, दृढ़तापूर्वक चलते जाओ तथा औरों को भी इस रास्ते पर कदम रखने के लिए प्रोत्साहित करते जाओ । श्रद्धा के साथ अपनी समझ का उपयोग करके सावधानी से आगे बढ़ते जाओ ।

(शेष पृष्ठ ११ पर)

यज्ञ

- पूज्यपाद

ईशावास्यमिदं स
तेन त्यक्तेन भुंजी

अखिल ब्रह्माण्ड
जगत है वह समस्त
को साथ रखते हुए
इसे भोगते रहो, इ
मत होओ क्योंकि
पदार्थ) किसीका भ

इस संसार में
शरीर धारण करके
इस शरीर को स्वस्
लिए संसार की व
उपयोग करें और मुवि
के लिए प्रयत्न करें
चीज-वस्तुएँ, व्यक्ति
मिले, उसमें रुको
सुख मिले ऐसी भ्रां
रहो । अभी मेरे पास
है, सुगंधित फूल है,
देता है तो कर लि
ऐसा फूल मिलता रहे
हो गया उपभोग । उ
शांति मिलेगी और उ
कुंठित हो जायेंगी ।

जीवन पाथेय

यज्ञमय जीवन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥
(ईशावास्योपनिषद् : १)

अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़-चेतन स्वरूप जगत है वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है । उस ईश्वर को साथ रखते हुए, त्यागपूर्वक इसे भोगते रहो, इसमें आसक्त मत होओ क्योंकि धन (भोग्य पदार्थ) किसीका भी नहीं है ।

इस संसार में आप मनुष्य शरीर धारण करके आये हैं तो इस शरीर को स्वस्थ रखने के लिए संसार की वस्तुओं का उपयोग करें और मुक्तिलाभ पाने के लिए प्रयत्न करें । जो भी चीज-वस्तुएँ, व्यक्ति-परिस्थिति मिले, उसमें रुको मत, उससे सुख मिले ऐसी भ्रांति में मत रहो । अभी मेरे पास एक फूल है, सुगंधित फूल है, 'प्रसन्नता देता है तो कर लिया थोड़ा उपयोग... किन्तु 'हररोज ऐसा फूल मिलता रहे, इसके बिना नहीं चलेगा...' तो हो गया उपभोग । **उपयोग** करने से सहज स्वाभाविक शांति मिलेगी और **उपभोग** करने से तुम्हारी योग्यताएँ कुंठित हो जायेंगी ।

> *संसार की सभी चीजें परमात्मा की हैं । इन चीजों को भोगबुद्धि से, स्वार्थ बुद्धि से हड़प करने लगोगे तो वह नाराज हो जायेगा । उनका अनादर करोगे तो भी वह संतुष्ट न होगा । किन्तु यदि उसकी चीजों का थोड़ तुम भी उपयोग करो, थोड़ा दूसरों में भी बाँटो । इससे वह संसार का स्वामी राजी होगा ।*

किन्हीं गुरु के एक शिष्य ने गुरु से पूछा :

''गुरुदेव ! संसार की वस्तुओं का उपयोग कैसे करें ? उनको भोगें या छोड़ दें ?''

गुरुजी ने कहा : ''अब मैं जो करूँ उसे तू देखता रह ।''

इतने में एक आदमी आया गुरुजी के पास । उसने गुरुजी को फल-फूल दिये, मिठाई दी । गुरुजी लेकर खाने लगे और उस आदमी के सामने देखा तक नहीं । वह आदमी तो यह देखता हुआ वापस चला गया । जाते-जाते शिष्य से कुछ कहता गया ।

गुरुजी ने शिष्य से पूछा : ''वह आदमी जाते-जाते तेरे से क्या कह रहा था ?''

शिष्य : ''गुरुजी ! वह बड़ा दुःखी हो गया, नाराज हो गया । कहता था कि 'कैसे महाराज हैं ये ? प्रसाद दिया तो स्वयं खाने ही लग गये । मुझे प्रसाद-स्वरूप कुछ दिया भी नहीं । लोभी हैं लोभी । सारा हड़प कर गये । इनमें तो मुझे श्रद्धा नहीं है ।' ऐसा-ऐसा वह कहता था ।''

थोड़ी देर बाद दूसरा आदमी आया और प्रसाद आदि लाया । गुरुजी ने उसकी चीज वापस लौटा दी और कह दिया कि नहीं चाहिए । वह भी दुःखी होकर वापस चला गया ।

तीसरा आदमी आया तो उसकी चीज तो गुरुजी ने उठाकर फेंक ही दी । तब उस व्यक्ति ने शिष्य से कहा : ''भाई ! नहीं रखना हो तो भले न रखें पर उठाकर इस तरह फेंकना तो नहीं चाहिए था ! जरा व्यवहार की अक्ल तो होनी चाहिए ।''

वह ऐंठकर, अकड़कर चला गया ।

कुछ समय बाद चौथा व्यक्ति आया । गुरुजी ने इसका प्रसाद स्वीकार कर लिया । उसमें से थोड़ा स्वयं रखा, शेष लानेवाले व्यक्ति को दे दिया और थोड़ी मीठी नजर डाल दी उस पर । वह व्यक्ति बहुत

खुश हो गया और कहने लगा : "अरे ! गुरुजी तो मानो साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं । प्रेम ही परमात्मा है । वेदों में भी कहा है : **आनंदो ब्रह्म** । ऐसे गुरु केवल तुम्हारे ही गुरु नहीं, अपितु विश्वगुरु लगते हैं । वे तो विश्वात्मा हैं । वे ब्रह्मवेत्ता तो ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं और सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त उनका चैतन्यवपु सबको आनंदित करता है । ये तो चलते-फिरते भगवान हैं । उन्होंने मेरा प्रसाद स्वीकार किया और अपने हाथों से मुझे भी प्रसाद दिया । मेरा तो जीवन धन्य हो गया ! वाह ! कितना प्रेम ! कितनी करुणा !! गुरु हों तो ऐसे हों ।"

गुरुजी ने शिष्य से कहा : "तेरे सवाल का जवाब मैंने दे दिया । तूने देखा कि जिस तरह सबकी चीजों का उपयोग किया उसीके अनुसार वे राजी या नाराज हुए । संसार की सभी चीजें परमात्मा की हैं । इन चीजों को भोगबुद्धि से, स्वार्थबुद्धि से हड़प करने लगोगे तो वह नाराज हो जायेगा । उसका कुछ भी उपयोग न करोगे तो भी वह राजी नहीं होगा और उनका अनादर करोगे तो भी वह संतुष्ट न होगा । किन्तु यदि उसकी चीजों का थोड़ा तुम भी उपयोग करो, थोड़ा दूसरों में भी बाँटो । इससे वह संसार का स्वामी राजी होगा ।"

> *न अति राग करो, न अति त्याग करो । न अति आसक्ति करो न अति विरक्ति करो । शरीर को स्वस्थ रखने के लिए, मुक्ति-लाभ पाने के उद्देश्य से वस्तुओं का स्वयं भी उपयोग करो और दूसरों के हित में उपयोग हो तो वह भी करो ।*

वे लोग ही संसार में सफल होते हैं जो संसार की चीज-वस्तुओं को अपनी न समझकर ईश्वर की समझते हैं । आवश्यकता के अनुसार खुद भी उसका उपयोग करते हैं और दूसरों के काम में भी लगा देते हैं ।

> *धन की तीन गति होती है : उत्तम गति है दान, मध्यम गति है भोग और कनिष्ठ गति है नाश ।*

कई लोग मैंने ऐसे देखे जो संसार के दलदल में फँसे हुए हैं, संसार की वस्तुओं में राग-द्वेष करके चिपके रहते हैं और कई लोग तो ऐसे विरक्त होते हैं कि कौपीन तक नहीं पहनते । उनके जीवन में कोई रस नजर नहीं आता । वैराग्य का अभ्यास तो है किन्तु प्रेम की पुलकितता नहीं है ।

न अति राग करो, न अति त्याग करो । न अति आसक्ति करो न अति विरक्ति करो । शरीर को स्वस्थ रखने के लिए, मुक्ति-लाभ पाने के उद्देश्य से वस्तुओं का स्वयं भी उपयोग करो और दूसरों के हित में भी लगाओ ।

एक बार नदी और तालाब के बीच आपस में बहस हो रही थी । तालाब ने नदी से कहा : "तू पगली है । तेरा बिलौरी काँच जैसा पानी दिन-रात सागर को देती रहती है । वह खारा सागर तुझे क्या देगा ? तू अपना पानी अपने पास रख । संग्रह कर । किसीको मत दे ।"

तब नदी ने कहा :

"भाई ! मेरा स्वभाव है बहना । मैं तो बहती रहूँगी और देती रहूँगी ।"

वह तो कल-कल, छल-छल करती, गुनगुनाती हुई बहती रही । समुद्र से उठी बाष्प के बने हुए बादल वृष्टि करते रहे । नित्य नवीन जलधारा लेकर नदी बहती रही तो 'हर-हर गंगे... हर-हर यमुने...' करके पूजी जा रही है । लेकिन तालाब ने तो संग्रह करना ही ठीक माना था । उसने किसीको पानी नहीं दिया तो पानी एक ही जगह पड़ा रहने से उसमें दुर्गंध पैदा हो गई । मच्छर आदि कीटाणु बढ़ गये, रोग-बीमारी फैलने लगी तो आखिर में सारे नगर का कूड़ा-करकट उसमें डालकर उसे बंद कर दिया गया । उसका अस्तित्व ही मिट गया ।

यह तो उदाहरण दिया गया है तथ्य समझाने के लिए । आपके पास भी जो कुछ संपत्ति हो उसका दूसरों के हित में उपयोग करोगे तो समष्टि चैतन्यरूप ईश्वर के खजाने से नित्य नवीन रसधाररूपी आत्मसंपत्ति

पाने के अधिकारी हो जाओगे ।

मैंने सुनी है एक कहानी एकनाथजी महाराज के बारे में ।

एकनाथजी महाराज ने गुरु-चरणों में रहकर, श्रद्धा-भक्ति और सेवा से परमात्मप्रसाद पाया था और फिर बहुजन हिताय- बहुजन सुखाय उसे बाँटने में लग गये थे ।

एक बार किसी दण्डी संन्यासी के पास एक भूतपूर्व सेठानी आयी और बोली :

''महाराजजी ! कुछ समय पहले हम बहुत धनवान थे । तब मैंने प्रण किया था कि मैं चार धाम की यात्रा करूँगी । चौरासी लाख योनियाँ हैं तो चौरासी लाख ब्राह्मण नहीं, चौरासी हजार भी नहीं तो चौरासी सौ ब्राह्मणों को तो जिमाऊँगी ही । लेकिन अचानक सेठजी की देह पंचतत्त्व में विलीन हो गई । मुनीमों और अन्य लोगों ने मिलकर सब संपत्ति हड़प कर ली । मैं कैसी मूर्ख रही कि जब धन-संपत्ति हाथ में थी तब दान-पुण्य किया नहीं । अपने लिए तो खूब खर्च किया परन्तु दूसरों के लिए कुछ नहीं किया । महाराज ! अब क्या करूँ ? संपत्ति का सदुपयोग नहीं किया तो विपत्ति आयी है । दुनिया ने धोखा दे दिया है । अब तो मेरी हालत ही दयाजनक हो गई है । अब मेरे मन में खटक रहा है कि मैंने जो प्रण किया था उसे मैं कैसे निभा पाऊँगी ? अब तो मैं मेहनत-मजदूरी करती हूँ, चक्की चलाती हूँ । मुझे तो पता ही नहीं था कि मुझे ये दिन भी देखने पड़ेंगे ।'' माई ने अपनी व्यथा प्रगट की ।

राजा हरिश्चंद्र जैसे को भी चांडाल के यहाँ नौकरी करनी पड़ी थी । भाग्य कब कैसी करवट ले उसका कोई पता नहीं । अतः जब अपने पास साधन- सुविधाएँ हैं, योग्यताएँ हैं तभी सत्कर्म कर लेना चाहिए ।

अरे ! राजा हरिश्चंद्र जैसे को भी चांडाल के यहाँ नौकरी करनी पड़ी थी । भाग्य कब कैसी करवट ले उसका कोई पता नहीं । अतः जब अपने पास साधन-सुविधाएँ हैं, योग्यताएँ हैं तभी सत्कर्म कर लेना चाहिए । खुद तो खूब घूमे-फिरे जहाजों में, होटलों में खूब खर्च किया तो क्या बड़ी बात है ? दूसरों की भलाई के लिए खर्च करो, उसीमें बुद्धिमानी है ।

संन्यासी विद्वान थे, जमाने के अनुभवी थे। उन्होंने कहा :

''पैठण में संत एकनाथजी महाराज रहते हैं । वे विश्वात्मा हैं, आनंदस्वरूप ईश्वर में रमण करते हैं । अगर वे मान जायें तो तू उनकी प्रदक्षिणा कर ले और वे रीझ जायें तो उन्हें भोजन जीमा दे । तुझे चार धाम की यात्रा एवं चौरासी सौ तो क्या चौरासी लाख ब्राह्मणों को भोजन कराने का लाभ हो जायेगा ।''

''एकनाथजी महाराज विश्वात्मा हैं, आनंदस्वरूप ईश्वर में रमण करते हैं । तू उसकी प्रदक्षिणा कर ले । उन्हें भोजन जीमा दे । तुझे चौरासी लाख ब्राह्मणों को भोजन कराने का लाभ हो जायेगा ।''

उस माई ने एकनाथजी महाराज के पास जाकर यह प्रार्थना की । उसकी व्यथा सुनकर एकनाथजी का हृदय पिघल गया । वे सहमत हो गये । उस माई ने भोजन बनाया और एकनाथजी को जीमाया, उनकी प्रदक्षिणा कर ली । ऐसा करके उसे पुण्यलाभ भी हुआ और उसके मन को प्रण पूरा कर पाने का संतोष भी मिला ।

धन की तीन गति होती है : उत्तम गति है दान, मध्यम गति है भोग और कनिष्ठ गति है नाश ।

धन का उत्तम उपयोग नहीं किया और भोग भी नहीं भोगे, परन्तु संग्रह ही किया तो उसका नाश होगा ही और अंत में धन की चौकीदारी करते-करते मर गये तो हाथ क्या लगा ?

(शेष पृष्ठ १३ पर)

'धर्मो रक्षति रक्षितः'

– पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मनु महाराज ने कहा है :

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत् ॥

'धर्मपालक का रक्षक स्वयं धर्म होता है । जो धर्म का तिरस्कार करता है, उसकी अधोगति होती है ।'

(मनुस्मृति : ८.१५)

जो सच्चे अर्थ में धर्म का पालन करते हैं, उनको संसार से वैराग्य हो जाता है । संसार में रहते हुए भी वे ईश्वर की ओर चल पड़ते हैं ।

जो सच्चे अर्थ में धर्म का पालन करते हैं, उनको संसार से वैराग्य हो जाता है । संसार में रहते हुए भी वे ईश्वर की ओर चल पड़ते हैं ।

किन्तु खतरे की बात यह है कि अनेक लोग धर्म को धंधा बना लेते हैं । वे धर्म का नाश कर देते हैं । धर्म के द्वारा जो आमदनी करना चाहते हैं, नाम कमाना चाहते हैं, धर्म की आड़ में मनमाना कार्य करते रहते हैं, उसकी तो न जाने क्या दुर्गति होती होगी... उन्हें बहुत कुछ सहना पड़ता है । जब तक उनकी पुण्याई रहती है, तब तक उन्हें पता नहीं चलता है लेकिन पुण्याई क्षीण होते ही उनके पतन का आरम्भ हो जाता है ।

आपके हृदय में धर्म के प्रति जितनी सच्चाई है, ईश्वर के प्रति जितनी वफादारी है, उतनी ही आपकी उन्नति होती है । ईश्वर तो सर्वनियन्ता है, अन्तर्यामी है, उससे क्या छुपाओगे ? किस तरह छुपाओगे ?

आपके हृदय में धर्म के प्रति जितनी सच्चाई है, ईश्वर के प्रति जितनी वफादारी है, उतनी ही आपकी उन्नति होती है । ईश्वर तो सर्वनियन्ता है, अन्तर्यामी है, उससे क्या छुपाओगे ? किस तरह छुपाओगे ?

एक पादरी था । उसे ज्ञात हुआ कि अमुक थिएटर में जो फिल्म चल रही है, वह बहुत प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है । अब पादरी बन बैठे, धर्म का लिबास पहन लिया और फिल्म देखने की इच्छा हुई लेकिन जाएँ कैसे ? उसने अपने विश्वसनीय आदमी द्वारा थिएटर के मैनेजर को चिट्ठी भेजी कि :

''आपके थिएटर में जो फिल्म चल रही है, वह बड़ी ही प्रसिद्ध हुई है । मैं वह फिल्म देखना चाहता हूँ लेकिन पादरी होने के नाते जिस दरवाजे से आम जनता आती है, उस दरवाजे से मैं नहीं आ सकता हूँ । मेरे लिये यदि आप किसी गुप्त दरवाजे से आने की व्यवस्था कर सकते हैं तो मैं उसके बदले आपको मनचाही रकम दे दूँगा । आप इतना इन्तजाम कर दें ताकि मैं फिल्म देख सकूँ ।''

थिएटर में ऐसे प्रायवेट दरवाजे तो होते ही हैं, लेकिन थिएटर का मैनेजर बड़ा बुद्धिमान था । उसने उस पादरी को पत्र लिखा : ''समाज में धर्म का लिबास पहनकर घूमते हो और छुपकर फिल्म देखना चाहते हो ? यह क्या समाज के साथ धोखा नहीं है ? धर्म के नाम पर बट्टा लगाना चाहते हो ? यह बड़े दुःख की बात है । हमारे थिएटर में तो क्या, किसी भी थिएटर में आज तक ऐसा कोई दरवाजा नहीं बना, जिसे परमात्मा न देखता हो । इसलिये मैं आपको अपने थिएटर में प्रवेश नहीं दे सकता । परमात्मा से छुपाकर प्रवेश देना संभव नहीं है । बड़ी शर्म की बात है कि मुझे आपको यह पत्र लिखना पड़ रहा है

सच्चाई है, ईश्वर
ापकी उन्नति होती
है, उससे क्या

मुक थिएटर में जो
प्राप्त हुई है । अब
और फिल्म देखने
ने अपने विश्वसनीय
ठी भेजी कि :
ल्म चल रही है, वह
फिल्म देखना चाहता
जस दरवाजे से आम
मैं नहीं आ सकता
गुप्त दरवाजे से आने
उसके बदले आपको
कम दे दूँगा । आप
तजाम कर दें ताकि मैं
ख सकूँ ।''
र में ऐसे प्रायवेट
ी होते ही हैं, लेकिन
मैनेजर बड़ा बुद्धिमान
ने उस पादरी को पत्र
''समाज में धर्म का
छुपकर फिल्म देखना
? यह क्या समाज
धोखा नहीं है ? धर्म
पर बट्टा लगाना चाहते
ह बड़े दुःख की बात
रे थिएटर में तो क्या,
थिएटर में आज तक
ई दरवाजा नहीं बना,
परमात्मा न देखता
ालिये मैं आपको अपने
में प्रवेश नहीं दे
। परमात्मा से छुपाकर
ड़ी शर्म की बात है
लिखना पड़ रहा है

लेकिन मैं सत्य कहे बिना भी तो नहीं रह सकता हूँ ।''

थिएटर के मैनेजर ने तो पत्र लिखकर उस पादरी की नाक काट दी । आज तक तो मैनेजर के दिल में पादरी के प्रति बड़ा आदर था । किन्तु आज भेद खुल गया । वह मैनेजर बड़ा ईमानदार तथा सात्त्विक बुद्धिवाला था । वह जानता था कि परमात्मा तो सबके रोम-रोम में बस रहा है, चाहे उसे राम कहो, कृष्ण कहो, अल्ला कहो या गॉड । वह सर्वत्र है, सर्वान्तर्यामी है । उससे क्या छुपाओगे ? कैसे छुपाओगे ? इतनी समझ उस पादरी को होती तो उसका तो कल्याण हो जाता ।

"किसी भी थिएटर में आज तक ऐसा कोई दरवाजा नहीं बना, जिसे परमात्मा न देखता हो । इसलिये मैं आपको अपने थिएटर में प्रवेश नहीं दे सकता । परमात्मा से छुपाकर प्रवेश देना संभव नहीं है ।"

धर्म का आशय क्या है ? इन्द्रियों तथा मन के आकर्षण को छुड़ाने की व्यवस्था को धर्म कहते हैं । भीतर छुपी हुई शक्तियाँ जगाने की व्यवस्था को धर्म कहते हैं ।

इन्द्रियों तथा मन के आकर्षण को छुड़ाने की व्यवस्था को धर्म कहते हैं । भीतर छुपी हुई शक्तियाँ जगाने की व्यवस्था को धर्म कहते हैं ।

तुलसीदासजी ने कहा है :

धर्म ते बिरति...

धर्म का आचरण करोगे तो भोगों से वैराग्य होगा और योग में रुचि हो जाएगी । धर्म का अनुष्ठान करने से आकर्षणों तथा संसारी भोगों से वैराग्य आएगा और योग करने से आत्मज्ञान पुष्ट होगा । धर्म के अनुष्ठान से वैराग्य होगा । वैराग्य से योग में रुचि होगी । योग में रुचि होने से ज्ञान होगा, बुद्धि शुद्ध होगी और शुद्ध बुद्धि में ही परमात्मसुख मिलेगा ।

धर्म के अनुष्ठान से वैराग्य होगा । वैराग्य से योग में रुचि होगी । योग में रुचि होने से ज्ञान होगा, बुद्धि शुद्ध होगी और शुद्ध बुद्धि में ही परमात्मसुख मिलेगा ।

वस्तु का आकर्षण कम करने के लिये जिस वस्तु का आकर्षण अधिक हो उसे निकालने का संकल्प लेकर प्रतिदिन दीर्घ प्रणव-प्राणायाम करें । अपवित्र एवं अशुद्ध रहनेवाले मनुष्य तथा महिलाओं के लिये ॐकार का जप निषिद्ध है । जो नित्य स्नान करते हैं, पवित्र रहते हैं और जिनके पास गुरुदत्त मंत्र है वे भले ही ॐकार का जप करें लेकिन साधारण आदमी 'ॐ...ॐ...ॐ...' करेगा तो वह भटक जाएगा ।

प्रत्येक मंत्र का अपना प्रभाव होता है । जो लोग मंत्र सहित ध्यान करते हैं, मंत्र सहित सेवा करते हैं, उनकी रक्षा होती है । रामतीर्थ जैसे शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति ॐकार का जप करते हैं । कितना शुद्ध जीवन है उनका ! उनको सेव, नींबू आदि कोई स्वादिष्ट वस्तु खाने की इच्छा होती तो मन को थका-थकाकर उस वस्तु को वहीं रखे रहने देते । मन की वासनाएँ पूरी करने में नहीं अपितु मिटाने में सफल हो जाते । ऐसे व्यक्ति प्रणव का जप करें तो शोभा देता है । जैसे चपरासी राष्ट्रपति के हस्ताक्षर (Signature) नहीं कर सकता है अथवा यों कहें कि जहाँ राष्ट्रपति के हस्ताक्षर चाहिये वहाँ चपरासी के हस्ताक्षर नहीं चलते । देखा जाय तो राष्ट्रपति भी व्यक्ति है और चपरासी भी व्यक्ति है फिर भी राष्ट्रपति में योग्यता अधिक विकसित है । ऐसे ही जिसका खान-पान, आचार-विचार शुद्ध है वही 'ॐ' सहित जप कर सकता है ।

जिसके जीवन में जप-तप नहीं है, उसका जीवन तो एकदम व्यर्थ है । जीवन में जप-तप का नियम अवश्य ही होना चाहिये । प्रतिदिन एक ही आसन पर बैठकर एकांत में एक-दो घंटे गुरुमंत्र का जप अवश्य

ही करें । इससे भजन में रुचि व आचरण में शुद्धि आएगी ।

जिसके जीवन में विवेक है, जिसको आत्मा का सुख मिल गया है, उसे फिर संसार का शुभ-अशुभ, मलिनता आदि कुछ नहीं लगता ।

भावनगर के पास चित्रासणी में मस्तराम बाबा रहते थे । वे महीनों तक नहीं नहाते थे फिर भी शुद्ध थे क्योंकि उन्होंने शुद्ध तत्त्व में विश्रांति पाई थी । जिनको आत्मज्ञान हो गया है, उनके लिये ये सब नियम करना अनिवार्य नहीं होता है । ऐसी ही एक मुसलमान माई फकीर थी । वह डीसा में रहती थी और एक बड़ा-सा कुर्त्ता पहनती थी । नहाती भी नहीं थी । कुर्त्ता फट जाता तो दूसरा पहन लेती लेकिन पहले वाले कुर्त्ते को भी नहीं उतारती थी ।

> *जो लोग मंत्र सहित ध्यान करते हैं, मंत्र सहित सेवा करते हैं, उनकी रक्षा होती है ।*

> *प्रतिदिन एक ही आसन पर बैठकर एकांत में एक-दो घण्टे गुरुमंत्र का जप अवश्य ही करें । इससे भजन में रुचि व आचरण में शुद्धि आएगी ।*

एक रात शिवलाल काका की होटल से एक साधक गुजर रहा था । यह माई काका की होटल के सामने पड़ी रहती थी । लगती तो पगली जैसी थी लेकिन वह बड़ी पहुँची हुई माई थी । वह साधक मेरे पास आया था । मैंने उसे ध्यान में बिठाया तो ध्यान में बैठे बैठे ही रात हो गई थी । रात के ११ बजे के बाद वह घर की ओर रवाना हुआ । फूटपाथ पर पड़ी वह माई उससे कहने लगी : "ऐ ! इधर आ साले ! माल मारकर जाता है ! गुरुजी ने खजाना दे दिया है । बीड़ी तो पिला, उस्ताद !"

> *"ये तो साहेब हैं साहेब ! जिन्नाद छोड़कर आये हैं । क्यों साहेब ! सच कहती हूँ न ?"*

बाद में उस साधक ने मुझसे पूछा : "बापू ! आपके और हमारे बीच की बात उसको कैसे पता चली ?"

मैंने कहा : "चलो, चलकर देखते हैं ।"

मुझे देखते ही वह तुरन्त बोल पड़ी : "ये तो साहेब हैं..." (ब्रह्म को कभी-कभी साहेब भी बोलते हैं ।) "साहेब जिन्नाद छोड़कर आये हैं ।"

मैं उसकी सांकेतिक भाषा समझ गया जिसमें वह कह रही थी कि ये पत्नी को छोड़कर आये हैं । उसने मुझसे फिर पूछा : "क्यों साहेब ! सच कहती हूँ न ?" मेरे साथ एक-दो शिष्य और थे । कहीं बापू की यह बात सबको पता न चल जाय, इसलिये अपनी बात को मोड़ती हुई वह सत्संग की बातें बताने लगी । वह ठिकरों में खाती थी, कुत्तों के साथ खाती थी । ऐसी थी उसकी निष्ठा ।

जिसका शुद्ध आचरण है उसके भीतर शुद्ध स्वरूप ईश्वर की भक्ति बढ़ जाती है । फिर उसे अशुद्ध देह में आकर्षण नहीं रहता, अहं नहीं रहता । फिर वह नहाये तो क्या और नहीं नहाये तो भी क्या ? कुत्तों के साथ खाये तो क्या और सोने-चाँदी के बर्तनों में खाये तो क्या ?

रामकृष्ण परमहंस का 'हृदय' नामक एक शिष्य था, जो उनका भानजा भी था । उसने रामकृष्ण से अनेकों बार कहा था कि वे उसे किसी ऐसे सिद्ध पुरुष के दर्शन करा दें जिसे परमात्मा का साक्षात्कार हुआ हो ।

एक दिन रामकृष्ण ने दक्षिणेश्वर में दरिद्रनारायणों के लिए भोजन समारोह करवाया और आसपास के क्षेत्रों में मुनादी करवाई कि जो भी गरीब परिस्थिति के लोग हैं, वे सभी दक्षिणेश्वर में आकर भोजन करें । अनेक व्यंजन बनवाये गये । दरिद्रनारायणों के आगमन व भोजन का आरंभ हुआ । इतने में एक महादरिद्र आया । उसे देखकर सब द्ररिद्र नाक-भौंहें सिकोड़ने लगे तथा धक्का देकर भगाने लगे । किसीने उसे पंगत में बैठने तक नहीं दिया । वह दूर जाकर शांति से बैठा रहा ।

रामकृष्ण की नजरें उसी पर टिकी हुई थीं । वे

ड़कर आये हैं ।''
झ गया जिसमें वह
कर आये हैं । उसने
! सच कहती हूँ
और थे । कहीं बापू
सबको पता न चल
कये अपनी बात को
वह सत्संग की बातें
वह ठिकरों में खाती
के साथ खाती थी ।

क भीतर शुद्ध स्वरूप
फिर उसे अशुद्ध देह
नहीं रहता, अहं नहीं
र वह नहाये तो क्या
नहाये तो भी क्या ?
नाथ खाये तो क्या
चाँदी के बर्तनों में खाये
?
ण परमहंस का 'हृदय'
शिष्य था, जो उनका
से अनेकों बार कहा
पुरुष के दर्शन करा
र हुआ हो ।
दिन रामकृष्ण ने
में दरिद्रनारायणों के
जन समारोह करवाया
पास के क्षेत्रों में मुनादी
कि जो भी गरीब
के लोग हैं, वे सभी
। अनेक व्यंजन बनवाये
न व भोजन का आरंभ
आया । उसे देखकर
लगे तथा धक्का देकर
ात में बैठने तक नहीं
से बैठा रहा ।
पर टिकी हुई थीं । वे

जानना चाहते थे कि अब वह क्या करता है । कुत्ते जहाँ पर फेंकी हुई पत्तलें चाट रहे थे, वह महादरिद्र उस ओर चल पड़ा तथा एक हाथ कुत्ते के गले में डाला और एक हाथ से जूठी पत्तलों से भोजन उठाकर खाने लगा । रामकृष्ण उनके करीब पहुँचे और देखा कि इस महादरिद्र की आँखों में चमक है, चेहरे पर कोई फरियाद नहीं है । रामकृष्ण पहचान गये कि ये सिद्ध पुरुष हैं । उन्होंने जाकर हृदय से कहा :

कुत्ते जहाँ पर फेंकी हुई पत्तलें चाट रहे थे, वह महादरिद्र उस ओर चल पड़ा तथा एक हाथ कुत्ते के गले में डाला और एक हाथ जूठी पत्तलों से भोजन उठाकर खाने लगा । आँखों में चमक है । चेहरे पर कोई फरियाद नहीं है ।

''तू कहता है न कि किसी सिद्ध पुरुष, ब्रह्मवेत्ता के दर्शन करवाना ? जा, वे हैं सिद्ध पुरुष जो सामने बैठकर पत्तलों से जूठन लेकर खा रहे हैं ।''

हृदय पहुँचा उनके पास और पूछा कि :

''महाराज ! दृढ़ ज्ञान कैसे प्राप्त हो ? आत्मसिद्धि कैसे मिले ?''

वे बोले : ''जब नाली के पानी और गंगाजल में एकत्व दिखे, तब समझना कि आत्मज्ञान दृढ़ हो गया ।'' एक सूक्ष्म रहस्य बता दिया उन्होंने । रामकृष्ण पहचान गये और उनका उत्तर भी शास्त्र-सम्मत था । कितनी निष्ठा होगी उन महापुरुष की ! भीखमंगे धुत्कार रहे हैं लेकिन चित्त में तनिक भी क्षोभ नहीं है और जूठी पत्तलों से क्षुधा निवृत्त कर रहे हैं !

कहने का तात्पर्य है कि इच्छा-वासना के अनुरूप जीवन-यापन करने से मनुष्य निम्न योनियों में भटकेगा और धर्मानुकूल, संयमित व मर्यादित जीवन जियेगा तो मनोबल व पुण्य में वृद्धि होगी । उच्च योनि की प्राप्ति होगी । यह भी नहीं पाना हो तो उच्च में उच्च भगवान का जिन्हें अनुभव है ऐसे महापुरुषों के चरणों में जाय, तत्त्वज्ञान सुने और उसीका मनन करे । इस तरह के अभ्यास से ब्रह्म-परमात्मा का आकर्षण बढ़ेगा और स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जायेगा ।...तो उठो और चल पड़ो आज ही किन्हीं ईश्वरप्राप्त सद्गुरु की शरण में । सच्चा जीवन जीने की युक्ति जानकर लग पड़ो । गुरु-प्रदत्त युक्ति से ही मुक्ति संभव है ।

स्वरूप का अनुसंधान

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

संसार का वैभव संभालने में, भोग भोगने में इतना लाभ नहीं होता है, जितना एकान्त में जप-तप करने से लाभ होता है और जप-तप करने से भी इतना लाभ नहीं होता जितना सत्संग से लाभ होता है। सत्संग में भी स्वरूप के अनुसंधान से जो लाभ मिलता है वह और किसीसे नहीं मिलता। इसीलिए जब तक स्वरूप का अनुभव न हो, तब तक बार-बार स्वरूप का अनुसंधान करते रहो। देखे हुए... भोगे हुए विषयों में से आस्था हटा दो।

'जो कुछ देखा-भोगा, सब स्वप्नमात्र था...' इस तरह विवेक में सचेत रहकर वृत्ति को प्रयत्नपूर्वक अंतर्मुख बनाते जाओ। संसार की चीज-वस्तुएँ याद करते रहने से वृत्ति बहिर्मुख बनती है और यदि वृत्ति बाह्य भोग्य पदार्थों में, मेरे-तेरे में बिखरती जायेगी तो आप अपने आत्मानंद को नहीं पा सकोगे।

एक बार इकबाल शराब की दुकान पर गया। रात का समय था। इकबाल ने खूब जमकर शराब पी। इतनी शराब पी कि लड़खड़ाने लगा। इसी प्रकार लड़खड़ाते हुए वह अपने घर की ओर जा रहा था। रास्ता न मिलने पर वह सोचने लगा : 'पता नहीं क्यों, हाथ में लालटेन होते हुए भी घर नहीं मिल रहा ?' शराब के नशे में चूर वह किसीके घर के आँगन में ही सो गया। जब सुबह हुई और नशा उतरा, तब उसके पास शराब की दुकानवाले का नौकर उसकी लालटेन लेकर आया और बोला :

''कल रात को आप यह लालटेन हमारी दुकान में भूल गये थे।''

इकबाल : ''यह कैसे हो सकता है ? मैं कल अपनी लालटेन तो मेरे साथ लाया हूँ। यह देखो !''

नौकर : ''आप जो लाये हैं वह लालटेन नहीं है। वह तो तोते का खाली पिंजरा उठा लाये हैं जरा देखो तो सही !''

अब भला, तोते का खाली पिंजरा हाथ में लेकर घूमने से रात के अंधेरे में घर कैसे मिलता ?

हँसी आती है न उस मूर्ख इकबाल पर ? ठीक इसी तरह ज्ञानी-महापुरुषों को हम लोगों पर हँसी आती है क्योंकि हम जाना तो चाहते हैं अपने सुखस्वरूप आत्म-घर में लेकिन वृत्ति को चैतन्यमय रखने के बजाय संसारमय रखते हैं। इसलिए सब पच-पचकर जल रहे हैं अशान्ति की आग में। आनंदस्वरूप जगन्नियंता आत्मा अपने पास है, फिर भी हम दुःखी हैं क्योंकि हम मन के कहने में हैं। अतः राग-द्वेष और दुःख को बढ़ानेवाले, बंधन बनानेवाले रास्ते पर मन को नहीं जाने देना चाहिए वरन् उसे समझा-बुझाकर शांति, सादगी, साहस और सत्यस्वरूप, आनंदस्वरूप ईश्वर की ओर चलाना चाहिए।

"आप जो लाये हैं वह लालटेन नहीं है। वह तो तोते का खाली पिंजरा उठा लाये हैं जरा देखो तो सही !"

हमारा जितना वृत्तियों पर नियंत्रण होता जायेगा उतने ही हम अपने प्राकृत चैतन्य स्वभाव में जगते जायेंगे। फिर तो देखे हुए में, सुने हुए में एवं जगत की नश्वर चीजों में तुच्छता दिखने लगेगी और जब विषय-भोग में से आस्था उठ जाएगी तब जिससे देखा जाता है उसको देखने के लिए आप उससे अलग नहीं बचेंगे, उसमें ही लीन हो जायेंगे। जैसे, अंधेरी कोठरी में देखने के लिए प्रकाश की जरूरत पड़ती है। जब सूरज को या पूनम के चाँद को देखना हो तो प्रकाश की क्या जरूरत है ? पदार्थ को देखने की इच्छा

करते हो, विषय-भोगों की वासना होती है तब बुद्धिवृत्ति के प्रकाश की जरूरत पड़ती है और जब पदार्थ को देखने की इच्छा नहीं रहती, विषय-भोगों से उपरामता आ जाती है तब बुद्धिवृत्ति का प्रकाश चैतन्यस्वरूप परमात्मा में लीन हो जाता है ।

जैसे, टार्च के अग्र भाग में फोकस की कटोरी होती है, उसके अंदर बल्ब होता है और बल्ब के अंदर विद्युत के तार होते हैं जिससे प्रकाश आता है । ठीक उसी तरह वृत्ति के अग्र भाग में चेतन का प्रकाश होता है । अंधेरे में टार्च के प्रकाश से वस्तु दिखाई देती है ऐसे ही हमारी वृत्ति वस्तु के आवरण को भंग करती है । जहाँ तुम्हारी वृत्ति-व्याप्ति है वहाँ वृत्ति के साथ चिदाभास होता है उसे वेदांत की परिभाषा में फल-व्याप्ति कहते हैं । भोग भोक्ता को तो परेशान कर देता है साथ ही स्वयं को भी क्षीण कर देता है जबकि प्रेम तो प्रेमी को आनंदित करता है और प्रेमास्पद को भी खुशहाल कर देता है। जब परमात्म-प्रेम हद पार कर लेता है, विवेक-वैराग्य संपूर्णत: जगता है तब उसे फल-व्याप्ति की जरूरत नहीं रहती ।

संसाररूपी अंधेरी कोठरी में नश्वर चीजों को देखने के लिए फल-व्याप्ति की जरूरत पड़ती है लेकिन जब संसार से उपराम होकर अपने घर में आओगे तब उस प्रकाशक को देखने के लिए वृत्ति की जरूरत नहीं रहती । फिर वृत्ति व्यापक होती जाती है, **सर्वोऽहं चैतन्योऽहं साक्षी-अहम्** में बुद्धि स्थिर होती जाती है, वृत्ति स्वस्वरूप में लीन होती जाती है ।

जैसे, कंगन-कुण्डल आदि अलग-अलग दिखने पर भी सोना ही है उसी प्रकार अलग-अलग नाम-रूप के होने पर भी एक ही शुद्ध ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान हो जाये तो फिर बुद्धि-वृत्ति ब्रह्म में ही लीन हो जाती है ।

> *राग-द्वेष और दुःख को बढ़ानेवाले, बंधन बनानेवाले रास्ते पर मन को नहीं जाने देना चाहिए वरन् उसे समझा-बुझाकर शांति, सादगी, साहस और सत्यस्वरूप, आनंदस्वरूप ईश्वर की ओर चलाना चाहिए । हमारा जितना वृत्तियों पर नियंत्रण होता जायेगा उतने ही हम अपने प्राकृत चैतन्य स्वभाव में जगते जायेंगे ।*

❀

जिन दिल बाँधा एक से...

जो भरोसा परमात्मा पर रखना चाहिए वह भरोसा अगर बेटे पर रखा तो धोखा जरूर मिलेगा । जो भरोसा ईश्वर पर रखना चाहिए वह भरोसा अगर धन पर रखा तो धन संभालने की चिन्ता जरूर होगी । जो भरोसा परमेश्वर पर रखना चाहिए वह भरोसा अगर मित्र पर रखा तो कलह जरूर होगा । यह प्रकृति का अकाट्य सिद्धान्त है । कबीरदासजी ने कहा है :

कबीरा इह जग आयके बहुत से कीन्हे मीत ।
जिन दिल बाँधा एक से वे सोये निश्चिंत ॥

जिससे आपका शाश्वत संबंध है उस एक परमेश्वर से अपना दिल बाँध लें तो आप निश्चिंत हो जायेंगे । ऐसा करने से आपके ऊपर शत्रुओं द्वारा खेले गये दाँव असफल हो जायेंगे। आपके ऊपर से मन की मुसीबतें हट जायेंगी, आपके पाप-ताप विलीन हो जायेंगे क्योंकि ईश्वर आपका परम सुहृद है ।

आप माँ की गोद में आये तो उस समय आपने कोई चिंता नहीं की किन्तु प्राणीमात्र के परम सुहृद उस ईश्वर ने आपके लिए माँ के शरीर में दूध बना दिया । दूध अगर ज्यादा गर्म होता तो मुँह जलता और ठण्डा होता तो वायु करता, मीठा होता तो डायबिटिज हो जाता और फीका होता तो भाता नहीं । बिल्कुल आपके अनुकूल दूध बनाया । जब चाहिए, जितना चाहिए, पिया, नहीं तो मुँह घुमा दिया । फिर भी बिगड़ता नहीं है, फ्रीज में नहीं रखना पड़ता और न ही गर्म करना पड़ता है । कैसी अद्भुत व्यवस्था है उस परमेश्वर की !

तुम्हारी मनोवृत्ति में अगर विषाद आ जाता है तो मित्र देकर वह तुम्हारा विषाद दूर कर देता है और तुममें उत्साह जगा देता है । अगर अहंकार बढ़ता है

तो विघ्न-बाधा और शत्रु देकर तुम्हारा शोधन करा देता है । कैसा है वह तुम्हारा परम सुहृद ।

काम करने से पूर्व पौरुष होता है, काम करते समय उत्साह होता है और कार्य करने के पश्चात् आपके हृदय में कार्य करने का फल होता है । कुर्सी फल नहीं, लड्डू फल नहीं, वरन् आपके हृदय में शान्ति फलित हुई या अशान्ति फलित हुई, आपके हृदय में घृणा और दुःख फलित हुआ या प्रेम और माधुर्य फलित हुआ ? अगर आपके हृदय में प्रेम, माधुर्य एवं भीतरवाले के प्रति धन्यवाद फलित हुआ है तो समझो आपने जो सत्कर्म किया वह सत्यस्वरूप परमात्मा ने स्वीकार कर लिया है ।

> *जिससे आपका शाश्वत संबंध है उस एक परमेश्वर से अपना दिल बाँध लें तो आप निश्चिंत हो जायेंगे ।*

खुशालदास साल में महीना-दो महीने एकान्त में चले जाते थे । आटा, दाल, सीधा-सामान ले जाते, घास-पत्तों से कुटिया बनाते और बैठकर भजन करते । एक बार इसी प्रकार सीधा-सामानादि ले जाकर, पर्णकुटी बनाकर जब वे भजन करने बैठे तो एक दिन... दो दिन... तीन दिन हो गये किन्तु भजन में मन न लगा । मन न लगने पर वे रो पड़े कि : 'प्रभु ! आखिर ऐसा क्यों हो रहा है ? पिछली बार जब आया था तो भजन में मन लगता था । इस बार क्यों नहीं लग रहा ? कोई आनंद नहीं आ रहा, शांति नहीं मिल रही ?' इस प्रकार प्रार्थना करते-करते एवं रोते-रोते खुशालदास सो गये ।

जब आँख खुली तो ऐसा लगा मानो भीतर से कोई बोल रहा है : 'ऐ खुशालदास ! बैठा तो है भजन करने किन्तु हृदय में द्वेष की आग जल रही है । जहाँ द्वेष की अग्नि जल रही है वहाँ शांति का झरना कैसे बहेगा ? जा, पहले जिसे दुश्मन मानकर, द्वेष करके आया है उससे माफी माँगकर आ । उसके हृदय में भी तो मैं हूँ । हृदय में द्वेष की आग लेकर तू शांति चाहता है ? हृदय में द्वेष की गाँठ बाँधकर मुझसे मिलना चाहता है ?'

> *"ऐ खुशालदास ! बैठा तो है भजन करने किन्तु हृदय में द्वेष की आग जल रही है । जहाँ द्वेष की आग जल रही है वहाँ शांति का झरना कैसे बहेगा ? जा, पहले जिसे दुश्मन मानकर, द्वेष करके आया है उससे माफी माँगकर आ । उसके हृदय में भी तो मैं हूँ ।"*

खुशालदास भागा और गया उस मित्र के पास, जिसके प्रति द्वेष की गाँठ थी । जाकर उसका दरवाजा खटखटाया । मित्र ने दरवाजा खोला और चौंककर पूछा :

"खुशाल ! तुम ? तुम कैसे आये ?"

खुशालदास : "मैं तुमसे माफी माँगने आया हूँ । तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में द्वेष की गाँठ है । तुम मुझे क्षमा कर दो । तुम चाहो तो यह द्वेष की गाँठ खोल सकते हो ।"

वह मित्र सुनते ही गले लग पड़ा । दोनों के नेत्रों से प्रेमाश्रु बह निकले । दोनों के हृदय में जो द्वेष की गाँठ थी, वह निकल गयी । खुशालदास वापस आये अपनी पर्णकुटी में और भजन करने बैठ गये । खुशालदास का ऐसा मन लगा कि वे फिर खुशालदास न बचे, आगे चलकर आर्य समाज के प्रसिद्ध संत आनंदस्वामी हो गये ।

जिसने वास्तविक संबंध को, शाश्वत संबंध को निभा लिया, जो परमात्मा के मार्ग पर चार कदम भी चल पड़ा वह तो धन्य है ही, उसके माता-पता भी धन्य हैं ।

भगवान शिव भी माता पार्वती से कहते हैं :

धन्या माता पिता धन्यो
गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः ।
धन्या च वसुधा देवि
यत्र स्याद्गुरुभक्तता ॥

'जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है ।'

आ

तीन

- पूज्यपाद

तीन बातें जो
हुए भी मूर्ख माना
माना जाता है औ
है । कौन-सी ती
पहली बात
मृत्यु जरूर आयेगी
कभी-भी मृत्यु आ
कोई कहेगा :
यह बात तो सब
नहीं, अभी जा
मानते हैं । साँप
आदमी मर जाता
अभी इस सत्संग
आप मुझसे पूछने
करें । पहले भाग
जानते, केवल मा
मानते हो किन्तु
ही मरेंगे ! अभी
जैसे, 'साँप
यह बात जानते
खड़े होते हो ऐसे
जान लो कि मृत्यु
सकती है, कहीं-
रखो । ऐसा सोच
घटने लगेगा ।
महाभारत क

तीन महत्त्वपूर्ण बातें

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

तीन बातें जो आदमी नहीं जानता वह विद्वान होते हुए भी मूर्ख माना जाता है, धनवान होते हुए भी कंगाल माना जाता है और जिंदा होते हुए भी मुर्दा माना जाता है । कौन-सी तीन बातें ?

पहली बात तो यह है कि मृत्यु जरूर आयेगी । कहीं-भी, कभी-भी मृत्यु आ सकती है ।

कोई कहेगा : ''महाराज ! यह बात तो सब जानते हैं ।''

नहीं, अभी जानते नहीं केवल मानते हैं । साँप काटता है तो आदमी मर जाता है, यह बात आप जानते हो । अगर अभी इस सत्संग पाण्डाल में कोई साँप आ जाये तो आप मुझसे पूछने के लिए खड़े नहीं रहोगे कि क्या करें । पहले भाग खड़े होंगे... इसी तरह मृत्यु को नहीं जानते, केवल मानते हो । 'एक दिन मरना है' यह मानते हो किन्तु यह भी सोचते हो कि 'अभी थोड़े ही मरेंगे ! अभी तो यह करना है... वह करना है...'

जैसे, 'साँप के काटने से आदमी मर जाता है' यह बात जानते हो और साँप को देखकर तुरंत भाग खड़े होते हो ऐसे ही इस बात को अच्छी तरह से जान लो कि मृत्यु जरूर आयेगी । मृत्यु कभी-भी आ सकती है, कहीं-भी आ सकती है ऐसा निरंतर स्मरण रखो । ऐसा सोचने से ही तुम्हारा लोभ, अहंकारादि घटने लगेगा ।

> *मृत्यु जरूर आयेगी । मृत्यु कभी-भी आ सकती है, कहीं-भी आ सकती है ऐसा निरंतर स्मरण रखो ।*

महाभारत का एक प्रसंग है :

एक बार एक ब्राह्मण गया युधिष्ठिर के पास दान लेने के लिए । युधिष्ठिर ने राजकाज की व्यस्तता के कारण कहा : ''हे ब्राह्मण देव ! कल आना । आपकी मनोकामना पूरी करूँगा ।''

भीम ने जैसे ही यह बात सुनी तो जाकर विजय का नगाड़ा बजाने लगे । युधिष्ठिर ने पूछा : ''क्यों भीम ! यह नगाड़ा क्यों बजा रहे हो ? अभी तो हमने कोई युद्ध नहीं जीता !''

भीम : ''महाराज ! आपने तो बड़ा युद्ध जीत लिया ।''

युधिष्ठिर : ''कैसे ?''

भीम : ''आपने तो काल को जीत लिया । कल वह ब्राह्मण भी जिंदा रहेगा और आप भी जीवित रहेंगे । इसीलिए आपने कल दान देने का वचन दिया । ऐसा करके आपने यही साबित किया कि आपने काल को जीत लिया ।''

युधिष्ठिर : ''मेरी गलती हो गई, भीम !''

उन्होंने तुरन्त ब्राह्मण को बुलाकर दान देकर सन्तुष्ट किया ।

एक बार श्रीकृष्ण और अर्जुन में चर्चा छिड़ी । अर्जुन ने कहा : ''युधिष्ठिर महाराज तो बड़े दाता हैं ।''

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''छोड़ो भी, युधिष्ठिर तो क्या बड़े दाता हैं ? वे तो देते समय सोच-विचार भी करते हैं जबकि कर्ण तो इस प्रकार दे देता है कि मानो कल ही इस संसार से वह चला जायेगा । कर्ण ही महा दानी है ।''

अर्जुन के गले यह बात नहीं उतरी । अर्जुन को शंकायुक्त देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''चलो, हम अभी परीक्षा कर लेते हैं ।''

श्रीकृष्ण ने योगशक्ति से अर्जुन को ब्राह्मण का रूप दिया और स्वयं भी ब्राह्मण रूप में परिवर्तित हो गये । फिर पहुँचे महाराज युधिष्ठिर के पास । वहाँ जाकर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''हमें एक मन चंदन की सूखी लकड़ी चाहिए । वह आप जैसे दाता के पास से ही मिल सकती है, कहीं और से नहीं क्योंकि बारिश हो रही है ।''

युधिष्ठिर : "अभी ? अभी सूखी लकड़ी कहाँ से लायेंगे इस बारिश में ? और आपको तो सूखी ही लकड़ी चाहिए न ?"

श्रीकृष्ण : "हाँ, एकदम सूखी चाहिए । हमें यज्ञ के लिए जरूरत है ।"

युधिष्ठिर : "यदि एकाध सेर चाहिए तो दे सकता हूँ । एक मन लकड़ी के लिए तो थोड़ा इंतजार करना पड़ेगा ।"

युधिष्ठिर की परीक्षा लेने के बाद दोनों ब्राह्मण वेश में कर्ण के पास पहुँचे एवं उससे भी यही कहा : "हमें एक मन चंदन की सूखी लकड़ी चाहिए ।"

कर्ण : "अभी तो बारिश हो रही है, लेकिन ठहरिये भूदेव ! मेरे महल के दरवाजों की लकड़ी सूखी है । वह मैं अभी आपको दे देता हूँ ।"

यह कह कर कर्ण ने अपने महल के दरवाजे उखाड़ दिये, पलंग आदि सब अन्य जो चंदन से बने थे वे सब भी देकर उन ब्राह्मण वेशधारी श्रीकृष्ण व अर्जुन की मनोवांछा पूरी की ।

तब ब्राह्मण वेशधारी श्रीकृष्ण ने कहा : "कर्ण ! तुमने हमारी इस तुच्छ इच्छा के लिये घर के दरवाजे क्यों उखाड़ दिये ?"

कर्ण : "हे ब्राह्मण देवता ! पता नहीं कल मैं जीऊँगा कि नहीं । अत: आज ही इन हाथों से जितना सत्कर्म हो जाये उतना अच्छा है । पता नहीं, कल मौत आ जाये तो ?"

मौत कभी-भी आ सकती है, कहीं-भी आ सकती है, किसी भी निमित्त से आ सकती है : यह बात हमें सदैव याद रखनी चाहिए ।

दूसरी बात यह है कि बीता हुआ समय कभी वापस नहीं आता । आप समय देकर कारखाना बना सकते हैं, आश्रम बना सकते हैं, डिग्रियाँ हासिल कर सकते हैं, हीरे-जवाहरात आदि संग्रह कर सकते हैं, गाड़ी, मोटर, बँगला खरीद सकते हैं लेकिन समय देकर आपने जो भी चीजें इकट्ठी की हैं उन सबको वापस करके भी आप उस समय का सौवाँ हिस्सा भी अपना आयुष्य नहीं बढ़ा सकते । पचास साल देकर आपने जो एकत्रित किया वह सबका सब आप दे दें फिर भी पचास घण्टे तो क्या पाँच मिनट भी आप अपना आयुष्य नहीं बढ़ा सकते... आपका समय इतना बहुमूल्य है । इसलिए अपने अमूल्य समय को व्यर्थ न गँवायें, सर्जनात्मक कार्य में लगायें, किसीके आँसू पोंछने में लगायें ।

समय देकर आपने जो भी चीजें इकट्ठी की हैं उन सबको वापस करके भी आप उस समय का सौवाँ हिस्सा भी अपना आयुष्य नहीं बढ़ा सकते ।

तीसरी बात है कि जैसा संग वैसा रंग होता है । बड़ा आदमी भी यदि छोटों के बीच ज्यादा रहता है तो चमचों की खुशामद से उसका अहंकार उभरने लगेगा और छोटी-छोटी बातों में उसका मन फिसलने लगेगा । अत: बड़े आदमी को चाहिए कि उससे भी जो बड़ा है ज्ञान में, भक्ति में, योग में, ईश्वर की दुनिया में, ऐसे व्यक्ति का संग करते रहना चाहिए ।

बड़े में बड़ा संग है संतों का संग, सत्संग । सत्यस्वरूप परमात्मा का संग किये हुए महापुरुषों का संग करने से, उनके अमृत-वचनों को सुनने से एवं जीवन में अमल करने से मनुष्य स्वयं भी परमात्मा का संग पाने के काबिल हो जाता है । अत: सदैव सच्चे संतों का संग करें, सत्शास्त्रों का अध्ययन करें ।

परमात्मा का संग किये हुए महापुरुषों का संग करने से, उनके अमृत-वचनों को सुनने से एवं जीवन में अमल करने से मनुष्य स्वयं भी परमात्मा का संग पाने के काबिल हो जाता है ।

मृत्यु अवश्यंभावी है एवं बीता हुआ समय कभी वापस नहीं आता- इस बात को जानकर जो व्यक्ति संतों, महापुरुषों का संग करता है, किन्हीं ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के श्रीचरणों में बैठकर सत्संग-श्रवण करता है एवं अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास करता है, वही वास्तव में अपना जीवन सार्थक करता है ।

❀

ॐ गीत

अपने रथ

- पूज्यपाद

इन्द्रियाणां हि
तदस्य हरति

'जैसे जल मे
है, वैसे ही विषय
जिस इन्द्रिय के
इस अयुक्त पुरुष
हर लेती है ।'(ग

नीचे गिरना
स्वाभाविक है तथ
पुरुषार्थ है । पान
ओर बह जाना स्व
मंजिल पर पानी
पम्प की आव
है । ऐसे ही जी
इन्द्रियों का स्वभाव
निम्न केन्द्रों में
करना । आत्मा-प
पद में प्रतिष्ठित
पुरुषार्थ तो करन
अनंत-अनंत जन
वर्त्तमान जीवन के
हैं । स्त्री का पुरु
पुरुष का स्त्री के
है । पाँचों इन्द्रि
आकर्षण बना र

न समय देकर आपने
सबको वापस करके
ा भी अपना आयुष्य
र आपने जो एकत्रित
सबका सब आप दे
पचास घण्टे तो क्या
: भी आप अपना
हीं बढ़ा सकते...
मय इतना बहुमूल्य
अपने अमूल्य समय
गँवायें, सर्जनात्मक
ायें, किसीके आँसू

ंग वैसा रंग होता
बीच ज्यादा रहता
का अहंकार उभरने
छोटी-छोटी बातों में
फिसलने लगेगा ।
आदमी को चाहिए
ी जो बड़ा है ज्ञान
, योग में, ईश्वर की
ऐसे व्यक्ति का संग
चाहिए ।
ड़ा संग है संतों का
ग । सत्यस्वरूप
ा संग किये हुए
संग करने से, उनके
वन में अमल करने
ंग पाने के काबिल
संतों का संग करें,

हुआ समय कभी
जानकर जो व्यक्ति
है, किन्हीं ब्रह्मवेत्ता
त्संग-श्रवण करता
ने का प्रयास करता
सार्थक करता है ।

अपने रक्षक आप बनो

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

'जैसे जल में चलनेवाली नाव को वायु हर लेती है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हर लेती है ।'(गीता : २.६७)

नीचे गिरना प्रत्येक के लिये स्वाभाविक है तथा ऊपर चढ़ना पुरुषार्थ है । पानी का नीचे की ओर बह जाना स्वभाव है। तीसरी मंजिल पर पानी चढ़ाना है तो पम्प की आवश्यकता पड़ती है । ऐसे ही जीव का, मन-इन्द्रियों का स्वभाव है नीचे गिरना, निम्न केन्द्रों में जीवन-यापन करना। आत्मा-परमात्मा के परम पद में प्रतिष्ठित होना है तो पुरुषार्थ तो करना ही पड़ेगा । अनंत-अनंत जन्मों के संस्कार वर्त्तमान जीवन के साथ बँधे रहते हैं। स्त्री का पुरुष के प्रति और पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण है । पाँचों इन्द्रियों को अपने अपने विषयों के प्रति आकर्षण बना रहता है ।

मनुष्य संसार में रहेगा तो बाल-बच्चे तो होंगे । उन्हें खिलाओ-पिलाओ, बड़ा करो, बेटी के लिए जमाई खोजो, कइयों के आगे नाक रगड़ो, कइयों को रिझाओ... ऐसा करते-करते मन में होने लगे कि संसार में कोई सार नहीं है । संसार के भोगों का बदला चुकाते-चुकाते वैराग्य आ जाय और ईश्वर की ओर चलने की उत्सुकता जाग जाय, इसके लिये संयमी जीवन जीते हुए आकर्षणों को मिटाते जाओ ।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं :

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥

'इन्द्रिय इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं । मनुष्य को उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिये क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्ग में विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं ।' (गीता : ३.३४)

तुलसीदासजी कहते हैं :

अलि पतंग मृग मीन गज, एक एक रस आँच ।
तुलसी तिनकी कौन गति, जिनको व्यापे पाँच ॥

भँवरे में तो इतनी ताकत होती है कि वह लकड़ी में छेद करके निकल जाय लेकिन आसक्ति के कारण कमल की कोमल पंखुड़ियों को छेदकर वह बाहर नहीं निकलता है और सरोवर पर आनेवाले हाथियों के पैरों तले कुचले जानेवाले कमल-सुमनों में वह भी कुचला जाता है, मर जाता है ।

पतंगे को रूप की आसक्ति होती है । वह दीपक की लौ के रूप के पीछे तड़प-तड़पकर, जलकर मर जाता है लेकिन अंतिम समय तक भी आसक्ति का परित्याग नहीं करता । हाथी को स्पर्श की आसक्ति होती है । शिकारी लोग गड्ढा खोदकर उसके ऊपर घास-फूस बिछाकर नकली हथिनी खड़ी करते हैं । स्पर्शसुख की लालसा में हाथी उस घास-फूस की नकली हथिनी के पास जाता है और गड्ढे में ऐसा गिरता है कि फिर उसके लिये बाहर निकलना असम्भव हो जाता है । मछली स्वाद की आसक्ति से कुंडी में फँस जाती है और मृग स्वर की आसक्ति में पड़ता है तो वह शिकार हो जाता है ।

इस प्रकार एक-एक भोग के पीछे एक-एक जीव को अपना विनाश मोल लेना पड़ता है तो मनुष्यों में

तो ये पाँचों साथ में पाये जाते हैं तो उनकी क्या गति होती होगी ? यह जीव अनंत जन्मों में से कभी पतंग बना होगा तो कभी हाथी बना होगा, कभी गाय, घोड़ा, गधा, बकरा कुछ भी बना होगा । अनंत जन्मों के संस्कार होते हैं, आकर्षण होते हैं । मनुष्य जन्म में इन आकर्षणों को मिटाने का प्रयत्न करके संयमी जीवन जिये, उसीमें उसका कल्याण है ।

मनुष्य इन आकर्षणों को एकदम नहीं मिटा पाता है इसीलिये संयमी (नियंत्रित) जीवन जी सके ऐसी जीवन-व्यवस्था भी की गई है । स्वाद का आकर्षण मिटाने के लिये व्रत, उपवास आदि होते हैं । काम का आकर्षण मिटाने के लिये विवाह का विधान है, जिसमें अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी व प्रदोष काल में ब्रह्मचर्य का पालन कर मनुष्य भोग के दोष से बच जाता है ।

उस लड़की को केन्सर का असाध्य रोग हुआ । मरणासन्न अवस्था में उसने अपनी माँ से कहा : "इन्होंने मेरी इज्जत बचाने के लिये मेरे साथ शादी की है । दो जीवों की रक्षा के लिये इन्होंने अपने सिर पर बदनामी मोल ली है । लेकिन घर में तो हम पिता-पुत्री की तरह रहे हैं ।"

मनुष्य संसार में रहेगा तो बाल-बच्चे तो होंगे । उन्हें खिलाओ-पिलाओ, बड़ा करो, बेटी बड़ी हो गई है तो जमाई खोजो, कइयों के आगे नाक रगड़ो, कइयों को रिझाओ... ऐसा करते-करते मन में होने लगे कि संसार में कोई सार नहीं है । संसार के आकर्षणों का, भोगों का बदला चुकाते-चुकाते वैराग्य आ जाय और ईश्वर की ओर चलने की उत्सुकता जाग जाय, इसके लिये संयमी जीवन जीते हुए आकर्षणों को मिटाते जाओ । जो लोग बुद्धिमान हैं, विरक्त भी हैं, उनके लिये मेहनत कम हो जाती है । जिनकी गहराई में आकर्षण है, वे साधन-भजन की तीव्रता, विवेक-वैराग्य की तीव्रता, भक्ति की प्रबलता, पवित्रता आदि को बढ़ाएँ तथा सावधान होकर लगे रहें और आगे बढ़ते जावें तो वे गिरने से बच जाएँगे ।

कीर्तन-भक्ति तो हितकारी है, प्रभातफेरी या संकीर्तन यात्रा मंगलकारी है लेकिन जो सावधान नहीं रहता है उसकी तो बरबादी होती ही है, दूसरों का भी नाक कट जाता है । इसलिये संकीर्तन यात्रा हो, गरबा हो या कोई भी अन्य सत्प्रवृत्ति हो, स्त्री-पुरुषों के लिये बड़े में बड़ा खतरा एक-दूसरे के सान्निध्य का है ।

साधक को सदैव सतर्कतापूर्वक इसका परीक्षण करते रहना चाहिये कि कहीं वह माया के आकर्षण में गिर तो नहीं रहा है ! अन्यथा कभी भी उसका पतन हो सकता है ।

गिदूमल नामक भक्त के यहाँ भजन-कीर्तन करने के लिये भाविक भक्तजन इकट्ठे होते थे । लड़के भी आते थे, लड़कियाँ भी आती थीं । वे आते तो थे भजन-कीर्तन करने, परन्तु सावधान नहीं रहे तो कई तो एक-दूसरे को देख-देखकर आकर्षित होने लगे । उनमें से एक लड़की गर्भवती हो गई । लड़का डर के मारे, इज्जत बचाने के लिये भाग गया । अब पूरा मामला गिदूमल के सर आ गया । उन्हें बहुत कुछ सहना पड़ा । भक्ति में लांछन लग गया, समाज में बहुत बदनामी हुई । उनको आश्रम भी बन्द करना पड़ा । उस लड़की की इज्जत बचाने के लिये गिदूमल ने घोषणा की कि जो कुछ हुआ उसके लिये मैं जिम्मेदार हूँ । मैं उस लड़की से शादी कर लेता हूँ ।' और गिदूमल सत्रह वर्षों तक उसके साथ रहे ।

फिर उस लड़की को केन्सर का असाध्य रोग हुआ । मरणासन्न अवस्था में उसने अपनी माँ से कहा : "इन्होंने मेरी इज्जत बचाने के लिये मेरे साथ शादी की है । दो जीवों की रक्षा के लिये इन्होंने अपने सिर पर बदनामी मोल ली है । लेकिन घर में

तो हम पिता-पुत्री की तरह रहे हैं । माँ ! मैं तो जा रही हूँ लेकिन तुझे इतना बता जाती हूँ कि ये तेरे जमाई नहीं हैं । ये तो मेरे-तेरे-सबके पिता हैं । इनकी करुणा-कृपा की कोई थाह नहीं है ।''

उस लड़की ने यह सब तो सत्रह वर्षों के बाद कहा लेकिन जब उसने गलती की थी तब तो समाज में, अखबारों में भक्ति करनेवालों का, कीर्तन करनेवालों का तो नाक कट गया । एक की गलती के कारण पूरे मंडल की बदनामी हो जाती है ।

मन यदि तनिक-सी छूट ले लेता है कि जरा-सा देखा, इसमें क्या बिगड़ता है ? अरे भैया ! ऐसा बिगड़ता है कि सुधारनेवाले थक जाते हैं फिर भी नहीं सुधरता है । इसलिये पुरुष परस्त्री को देखे तो जगदम्बा का भाव करे और स्त्री परपुरुष को देखे तो भगवद्भाव करे अथवा तो ज्ञान की दृष्टि से देखे ।

भक्ति का, भजन-कीर्तन का प्रचार बहुत उत्तम कार्य है । लेकिन हजारों जन्मों के बुरे संस्कार हैं, अतैव ऐसी उम्र में विशेष सावधानी रखनी है कि रामनाम जपते-जपते कहीं काम तो जोर नहीं मार रहा है ! सबसे अच्छी बात तो यह है कि महिलाओं का विभाग अलग होना चाहिये, पुरुषों का विभाग अलग होना चाहिये । उसमें भी जो समझदार हैं, बुजुर्ग हैं, उन्हें मंडल पर नजर रखनी चाहिये कि कहीं ऐसी त्रुटि होने की संभावना तो नहीं है !

यदि आप पैदल चलते हैं और गिरते हैं तो थोड़ी-सी चोट लगेगी किन्तु साइकिल से गिरोगे तो पैदल की अपेक्षा कुछ अधिक चोट लगेगी । स्कूटर से गिरोगे तो और अधिक चोट लगेगी और हेलीकॉप्टर या जेट विमान से गिरोगे तो हड्डी-पसली का पता नहीं लगेगा । ऐसे ही भक्ति के जितने ऊँचे साधन में आप जितनी लापरवाही करेंगे उतना ही अधिक खतरा हो सकता है ।

पाप पहले आँख से घुसता है, फिर वाणी से पुष्ट होता है और बार-बार उसका चिन्तन करने से आकर्षण की रस्सी मजबूत होती है और पतन होने में देर नहीं लगती ।

कीर्तन-भक्ति तो हितकारी है, प्रभातफेरी या संकीर्तन यात्रा मंगलकारी है लेकिन जो सावधान नहीं रहता है उसकी तो बरबादी होती ही है, दूसरों का भी नाक कट जाता है । इसलिये संकीर्तन यात्रा हो, गरबा हो या कोई भी अन्य सत्प्रवृत्ति हो, स्त्री-पुरुषों के लिये बड़े में बड़ा खतरा एक-दूसरे के सान्निध्य का है ।

मन यदि तनिक-सी छूट ले लेता है कि जरा-सा देखा, इसमें क्या बिगड़ता है ? अरे भैया ! ऐसा बिगड़ता है कि सुधारनेवाले थक जाते हैं फिर भी नहीं सुधरता है । इसलिये पुरुष परस्त्री को देखे तो जगदम्बा का भाव करे और स्त्री परपुरुष को देखे तो भगवद्भाव करे अथवा तो ज्ञान की दृष्टि से देखे ।

श्रीमद्भागवत की कथा के माहात्म्य में गोकर्ण अपने पिता से कहता है : ''पिताजी ! इस शरीर में क्या है ? दो खड़ी हड्डियाँ हैं, कुछ आड़ी हड्डियाँ हैं, बीच में माँस और नस-नाड़ियाँ हैं । ऊपर चमड़े से ढका हुआ है । नाक में लीथ है, मुँह में थूक है, लार है और पेट में मल, मूत्र, रक्त, पित्त, कफ इत्यादि हैं, फिर भी यह शरीर अच्छा लगता है, प्यारा लगता है क्योंकि उसमें मेरा प्यारा चैतन्यदेव ज्यों-का-त्यों है । शरीर मुर्दा हो जाय तो कौन पूछता है ? इस मुर्दे शरीर में कोई आकर्षण नहीं है, लेकिन इस मुर्दे शरीर को जो चेतना दे रहा है, उस परमात्मा का आकर्षण है ।''

यदि मन फिसलता है तो सीताजी को याद करो कि : 'हे माँ सीता ! हे जगदम्बा ! आप मेरी रक्षा करो ।' या रामजी को याद करो कि : 'मेरे राम... राम... हे राम ! मेरी रक्षा करो ।'

सीताजी को रावण ने प्रलोभन दिये, डराकर, कूड़-

कपट-धोखे से गुमराह करने की कोशिश की फिर भी सीताजी का मन एक क्षण भी फिसला नहीं । रामजी के आगे शूर्पणखा क्या-क्या रूप लेकर आई, फिर भी रामजी का चित्त भ्रमित नहीं हुआ । अपने चित्त को गिरने से बचानेवाला ही अपनी रक्षा आप कर सकता है । फिर भले ही वह थोड़ी ही साधना करे और गलती न करे तो लाभ अधिक उठाएगा । साधना अधिक करते हुए त्रुटियाँ भी अधिक करनेवाला अपना ही विनाश कर लेगा ।

किसी माली ने खूब लम्बा-चौड़ा बगीचा बनाया । उसकी खूब रखवाली की । उसमें खूब फूल खिले । उन फूलों को एकत्रित करके उनमें से इत्र निकाला । ढेर सारे फूलों में से थोड़ा-सा ही इत्र मिला और उस इत्र को उसने नाली (गटर) में फेंक दिया तो उसका लम्बा-चौड़ा बगीचा किस काम का ? उसकी रखवाली का क्या मूल्य पाया उसने ?

इसी तरह हमारा शरीररूपी लम्बा-चौड़ा बगीचा है । उसमें हमारे खान-पान और संयम रखवाले हैं । हम जो खाते हैं उसका रस बनता है । रस से रक्त, रक्त से मज्जा और मज्जा से ऊर्जा, वीर्य बनता है । वह स्त्री में स्त्रीत्व है और पुरुष में पुरुषत्व है । चालीस दिन तक किये गये भोजन से मात्र सवा तोला वीर्य बनता है और वही यदि किसी ऐसे-वैसे आकर्षण से, स्वप्न दोष के द्वारा अथवा किसी अन्य दोष से नाश हो जाय तो जैसे माली ने इत्र को नाली में फेंक दिया, ऐसा ही तुमने किया । उस माली को तुम क्या कहोगे ? बेवकूफ ही कहोगे न ! अतः ऐसी बेवकूफी आप न करें । पाश्चात्य जगत से प्रभावित लेखकों के चक्कर में न आयें और अपने शास्त्र-सम्मत अनुभव का आदर करें ।

जानकारों का कहना है कि चालीस दिन तक अच्छा पौष्टिक भोजन खाओ तो सवा तोला वीर्य बनता है और वह आकर्षणों में, नासमझी से नष्ट हो जाता है । इसीलिये साधना में बरकत नहीं आती है । यदि आपका वीर्य सशक्त हो जाय तो केवल संकल्प करके बैठने मात्र से ध्यान लग जाय, समाधि का अनुभव हो जाय, इतना सामर्थ्य होता है वीर्यवान में । जितने अंश में वीर्यरक्षण होता है, उतने अंश में प्रसन्नता होगी, बुद्धि में तीव्रता होगी, अच्छे विचार आएँगे । वीर्यनाश अर्थात् सर्वनाश ।

सच्चा मित्र वही है जो अपने मित्र की गलती को ठीक से बता दे और उसे गलतियों से बचाए । जो गलतियों को दिखाने के बदले उसमें सहयोग देता है, वह तो मित्र के रूप में शत्रु है ।

जिसे अपना शीघ्र उत्थान करना हो वह सदाचारी सत्पुरुषों की नजरों में रहे ताकि मन उसे धोखा न दे सके । बारह-बारह वर्ष के परिश्रम के बाद भी मन, इन्द्रियाँ शायद ही अनुशासित हों, वे महापुरुषों के सान्निध्य मात्र से सहज ही अनुशासित हो जाती हैं । अपने बल पर चलना चाहोगे तो काफी मेहनत करनी पड़ेगी और महापुरुषों के बतलाये रास्ते पर चलोगे तो सरलता और शीघ्रता से पहुँच जाओगे ।

जो साधक साधन-भजन करना चाहता है, ऊपर उठना चाहता है, उसे उतनी ही सुरक्षा की भी आवश्यकता होती है । यदि आप पैदल चलते हैं और गिरते हैं तो थोड़ी-सी चोट लगेगी किन्तु साइकिल से गिरोगे तो पैदल की अपेक्षा कुछ अधिक चोट लगेगी । स्कूटर से गिरोगे तो और अधिक चोट लगेगी और हेलीकॉप्टर या जेट विमान से गिरोगे तो हड्डी-पसली का पता नहीं चलेगा । ऐसे ही भक्ति के जितने ऊँचे साधन में आप जितनी लापरवाही करेंगे उतना ही अधिक खतरा हो सकता है । अतैव खूब सावधान रहना चाहिये ।

आप तो सावधान रहो लेकिन जिसे आप स्नेह

करते हो उसे भी सावधान करो, उस पर भी निगरानी रखकर एक-दूसरे को गिरने से बचाओ । एक-दूसरे की गलती को पोषण न दो, सहयोग न दो अपितु एक-दूसरे की गलती को निकालो । सच्चा मित्र वही है जो अपने मित्र की गलती को ठीक से बता दे और उसे गलतियों से बचाए। जो गलतियों को दिखाने के बदले उसमें सहयोग देता है, वह तो मित्र के रूप में शत्रु है । किसीका रूप-लावण्य या मकान-दुकान अथवा धन नष्ट हो जाय तो उतनी हानि नहीं है जितनी चारित्रिक पतन से हानि होती है ।

> *संयम से, शक्ति से, समझाने-बुझाने से भी अपनी रक्षा आप कर सकोगे तो ही होगी अन्यथा तैंतीस करोड़ देवता भी आ जायें परन्तु जब तक आप स्वयं विकारों से बचकर ऊँचे उठना नहीं चाहोगे, उसके लिये पुरुषार्थ नहीं करोगे तो आपका कल्याण हो, यह संभव नहीं है ।*

यदि हम चरित्रवान हैं, सत्कृत्य करते हैं तो हमारी बुद्धि सही निर्णय लेती है, हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करती है और हम दुष्चरित्र हैं तो बुद्धि गलत निर्णय करती है, हमें विनाश की ओर घसीट ले जाती है । इसीलिये कहते हैं :

विनाशकाले विपरीत बुद्धि ।

शंकराचार्यजी ने भी कहा है कि : त्यागने योग्य क्या है ? **कनकं च कान्ता** । कनक और कान्ता, माने धन और स्त्री को त्यागना है । साधु को तो कंचन, कामिनी त्यागना है और गृहस्थी को इनकी आसक्ति त्यागना है । साधना के पथ की ये ही दो बड़ी घाटियाँ हैं, जिसे पार करते ही मंजिल का पता चलने लगता है । साधक बने और गुरु की निगाह में रहे तो फिर माया से भी बचेगा और कामिनी से भी बचेगा क्योंकि गुरु का प्रभाव ही ऐसा होता है कि तुम्हारा मन कुछ भी सोचे, गुरु की याद आते ही मन तुरन्त वापस आ जाता है । जिसे अपना शीघ्र उत्थान करना है वह सदाचारी सत्पुरुषों की नजरों में रहे ताकि मन उसे धोखा न दे सके । जैसे गुरु के सामने बैठे हो तो इधर-उधर देखने की इच्छा हो फिर भी नहीं देखोगे, पानी पीने की इच्छा होने पर भी जल्दी नहीं उठोगे । चंचलता स्वतः कम होने लगती है । मन-इन्द्रियाँ अपने-आप नियंत्रित हो जाती हैं। बुद्धि अपने-आप ध्यान के पथ पर अग्रसर होने लगती है । सद्‌गुरुओं की हाजरी मात्र से बड़ा लाभ होता है अन्यथा मन को, इन्द्रियों को बलपूर्वक भगवान के ध्यान में लगाना पड़ता है । बारह-बारह वर्ष के परिश्रम के बाद भी मन, इन्द्रियाँ शायद ही अनुशासित हों, वे महापुरुषों के सान्निध्य मात्र से सहज ही अनुशासित हो जाती हैं । अपने बल पर चलना चाहोगे तो काफी मेहनत करनी पड़ेगी और महापुरुषों के बतलाये रास्ते पर चलोगे तो सरलता और शीघ्रता से पहुँच जाओगे । फिर भी जो अपने लक्ष्य में दृढ़तापूर्वक लगा रहता है, वह कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न आवे उन्हें पार करके अपने लक्ष्य को हासिल कर ही लेता है ।

> *जिसे अपना शीघ्र उत्थान करना है वह सदाचारी सत्पुरुषों की नजरों में रहे ताकि मन उसे धोखा न दे सके ।*

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं
आगे बढ़ने वालों को ।
विपदाएँ कब रोक सकी हैं
पथ पर चलने वालों को ॥

राजा भरथरी ने सम्पूर्ण राजपाट का त्याग कर दिया और गोरखनाथजी के चरणों में जा पहुँचे। उनसे दीक्षित हुए और उनकी आज्ञानुसार कौपीन पहन निकल पड़े । इतना त्याग कर दिया, माया और कामिनी तो छोड़ दी फिर भी जब तक साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक मन कब धोखा दे दे, कोई पता नहीं । अतैव सदैव सावधान रहना चाहिये ।

भरथरी किसी गाँव से गुजर रहे थे । वहाँ उन्होंने

देखा कि किसी हलवाई की दुकान पर गरमागरम जलेबी बन रही है । भूतपूर्व सम्राट के मन में आया कि : आहा ! यह गरमागरम जलेबी कितनी अच्छी लगती है ! वे दुकान पर जाकर खड़े हो गये और बोले : ''थोड़ी जलेबी दे दो ।''

दुकानदार डाँटते हुए कहता है : ''अरे ! मुफ्त का खाने को साधु बना है ? सुबह-सुबह कोई ग्राहक भी नहीं आया है और मैं तुझे मुफ्त में दे दूँ तो सारा दिन ऐसे ही मुफ्त में खानेवाले आएँगे। जरा काम-धंधा करो और कुछ टका कमा लो, फिर आना । गाँव के बाहर एक तालाब खुद रहा है, वहाँ काम करो तो दो टका मिल जाएगा, फिर मजे से जलेबी खाना ।''

बारह-बारह वर्ष के परिश्रम के बाद भी मन, इन्द्रियाँ शायद ही अनुशासित हों, वे महापुरुषों के सान्निध्य मात्र से सहज ही अनुशासित हो जाती हैं ।

भरथरी मजदूरी करने चले गये । दिनभर तालाब की मिट्टी खोदी, टोकरी भर-भरकर फेंकी तो दो टका मिल गया । भरथरी दो टके की जलेबी ले आए । फिर मन से कहने लगे : 'अहाहा... ! देख, दिनभर मेहनत की है, अब खा लेना भरपेट जलेबी ।'

रास्ते में से भिक्षापात्र में गोबर भर लिया था । तालाब के किनारे जाकर बैठे और खुद से ही कहने लगे : 'ले ! दिनभर की मेहनत का फल खा ले ।' होठों तक जलेबी लाये और दूसरे हाथ से मुँह में गोबर का कौर ठूँस दिया । वह जलेबी पानी में फेंक दी । फिर दूसरी ली : 'ले ले खा...' और मुँह में गोबर भर दिया । जलेबी तालाब में फेंक दी । भरथरी मन को डाँटने लगे :

'राजपाट छोड़ा, सगे-सम्बन्धी छोड़े, फिर भी अभी स्वाद नहीं छूटा ? मछली की तरह जिह्वा के विकार में फँसा है तो ले, खा ले ।' ऐसा कहकर फिर से मुँह में गोबर ठूँस लिया । मुँह से थू-थू होने लगा तब भी वे कहते हैं : 'नहीं-नहीं... अभी और खा ले... यह भी तो जलेबी है । गाय ने जब इसे खाया होगा तो उसके लिये तो यह जलेबी थी । वह गाय का खाया हुआ चारा ही तो अब गोबर बना है ।' ऐसा करते-करते उन्होंने सारी जलेबियाँ तालाब में फेंक दीं । अब आखिरी जलेबी बची थी हाथ में । मन ने कहा : 'देखो, इतना मुझे सताया है, दिनभर मेहनत करके थकाया है, चलना भी मुश्किल हो रहा है । अब कुल्ला करके एक ज[illegible] तो खाने दो !'

भरथरी ने अपने-आप से ही [illegible] : 'अच्छा ! तू अभी मेरा [illegible] रहना चाहता है तो [illegible] से जलेबी तालाब में [illegible] दी और कहा : [illegible] और [illegible] कल ला दूँगा और [illegible] खिलाऊँगा [illegible] ।' [illegible] मानो उनको हाथ जोड़ता है कि अब जलेबी नहीं खानी है, कभी नहीं खानी है । आप जो कहोगे, अब मैं वही करूँगा ।

किसी लड़की को देखा तो उसके प्रति मन में विकार आया । तीर्थराम सावधान हो गये । जैसे कोई पपीते की छाल को काँटों की बाड़ में फेंक देता है, ऐसे ही अपने-आपको काँटों की बाड़ में फेंक दिया । ...फिर तो तीर्थराम मन के स्वामी हो गये । तीर्थराम में से स्वामी रामतीर्थ हो गये ।

अब मन हो गया नौकर और खुद तो हैं ही स्वामी । मन के कहने में चलकर खुद स्वामी होते हुए भी नौकर जैसे बन गये थे तथा मन बन गया था स्वामी ।

संयम से, शक्ति से, समझाने-बुझाने से भी अपनी रक्षा आप कर सकोगे तो ही होगी अन्यथा तैंतीस करोड़ देवता भी आ जाय परन्तु जब तक आप स्वयं विकारों से बचकर ऊँचे उठना नहीं चाहोगे, उसके लिये पुरुषार्थ नहीं करोगे तो आपका कल्याण हो, यह संभव नहीं है ।

जब कभी मन में विकार आवे तो उसका बलपूर्वक सामना करो, विकारों को सहयोग देकर अपना सत्यानाश

मत करो । विकारों का सामना नहीं करोगे और मन को जरा-सी भी छूट दे दोगे कि 'जरा चखने में क्या जाता है... जरा देखने में क्या जाता है... जरा ऐसा कर लिया तो क्या ? जरा-सी सेवा ली है तो उसमें क्या ?' ऐसे जरा-जरा करने में मन कब पूरा घसीटकर ले जाता है, पता भी नहीं चलता है । इसलिये, मन को जरा भी छूट मत दो ।

स्वामी रामतीर्थ प्रोफेसर तीर्थराम थे और कॉलेज में सबको पढ़ाते थे । इन्द्रियों का तो स्वभाव है बहिर्मुखता । किसी लड़की को देखा तो उसके प्रति मन में विकार आया । तीर्थराम सावधान हो गये और कहने लगे : 'हे मन के विकारों ! आज तक तुमने मेरा सत्यानाश किया है । हे मलिन दृष्टि ! तू ही मुझे जन्म-मरण के चक्कर में ले जा रही थी ।' मन-ही-मन ऐसा कहकर जैसे कोई पपीते की छाल को काँटों की बाड़ में फेंक देता है, ऐसे ही अपने-आपको काँटों की बाड़ में फेंक दिया । यह कहते हुए कि : 'ले, कर स्पर्श और मजा ले । देख, कितना सुन्दर है ! वह भी पाँच भूत और यह भी पाँच भूत । वह भी माया और यह भी माया । उसकी हड्डी-माँस पर चमड़ा है तो इसके ऊपर भी छाल है, पत्तियाँ हैं । कर ले आलिंगन ।' कॉलेज से छूटे थे तब से वहीं पड़े रहे, रातभर काँटों की बाड़ में । सुबह हुई तो मन उनके आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया कि दूसरी बार नहीं देखूँगा । मेरी हार हुई और तुम्हारी जीत हुई ।

जब हम मन को बेईमानी करने में सहयोग देते हैं तो विकार हम पर हावी हो जाते हैं और सावधान होकर मन के विकारों को मिटाने में डट जाते हैं तो वही मन हमारा मित्र हो जाता है, वह मन परमात्मरस से पूर्ण हो जाता है ।

फिर तो तीर्थराम मन के स्वामी हो गये । तीर्थराम में से स्वामी रामतीर्थ हो गये । उन्होंने जहाँ कदम रखे, वह भूमि भी तीर्थ हो गई ।

जब हम मन को बेईमानी करने में सहयोग देते हैं तो विकार हम पर हावी हो जाते हैं और सावधान होकर मन के विकारों को मिटाने में डट जाते हैं तो वही मन हमारा मित्र हो जाता है । वह मन परमात्मरस से पूर्ण हो जाता है । यदि निगरानी नहीं रखते हैं तो मन पुष्ट हो जाता है, मनमानी करता है, विकारों में घसीट ले जाता है । वह मन हमारा शत्रु बन जाता है, जन्म-मरण के चक्कर में घुमाता रहता है । भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है :

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

'हे अर्जुन ! शरीररूप यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है ।' (गीता : १८.६१)

वही ईश्वर हमारे हृदय में सुखस्वरूप है, आनंदस्वरूप है । जब देखने की इच्छा हो तो उसीको याद करो । दिखनेवाली चीजें प्यारी लगती हैं तो उसकी गहराई में तू ही है । अब मुझे पता चला है कि बाह्य आकृति तो माया है और आकृति का आधार मेरा आत्मा है, वही मेरा असली स्वरूप है... **सोऽहम्** । ऐसे विचार से आपका देखने का आकर्षण मिटता जाएगा और जिससे देखा जाता है उस आत्मा में स्थिति होने लगेगी ।

कुछ सुनने की इच्छा हो तो मन को समझाओ कि बाहर का 'ताकधिनाधिन...' क्या सुनना ? जिससे सुना जाता है, उस प्यारे का मधुर नाद सुन ले । स्पर्श का सुख लेने की इच्छा हो तो सोचो कि स्पर्श इन्द्रियों का विषय है । इन्द्रियों को मन सत्ता देता है । मन को जो सत्ता देती है उस बुद्धिवृत्ति में चैतन्य की सत्ता है । जिस चैतन्य की सत्ता से देखा, सुना, सूँघा, चखा और स्पर्श किया जाता है, वह चैतन्यदेव परमात्मा मेरा आत्मा बनकर बैठा है । विषय-विकारों से बचकर उस आत्मा में स्थिति करो, इधर-उधर भटकते हुए मन को बार-बार आत्मा में लाओ ।

गुरु सदा तत्पर हैं तुम्हें ले चलने को । वे सदा यह देखने को आतुर हैं कि जीव कब माया के आवरणों

(शेष पृष्ठ १३ पर)

जाग सके तो जाग...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

पड़ा रहेगा माल खजाना छोड़ त्रिया सुत जाना है।
कर सत्संग अभी से प्यारे नहीं तो फिर पछताना है ॥
खिला-पिलाकर देह बढ़ायी वह भी अग्नि में जलाना है।
कर सत्संग अभी से प्यारे नहीं तो फिर पछताना है ॥

सिकंदर की मृत्यु का समय आया तब उसकी माँ ने कहा :

"बेटा ! मेरा क्या होगा ?"

सिकंदर : "अभी तो मुझे शांति से मरने दे, माँ ! तीन दिन के बाद कब्र में बुलाने आना, मैं तेरे से मिलने अवश्य आऊँगा ।"

माँ को कैसे भी समझाकर सिकंदर ने शांति से मरना चाहा और अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा : "जब मैं मर जाऊँ तब तुम लोग मेरे दोनों हाथ अर्थी से बाहर रखना ताकि लोगों को पता चले कि मैंने बहुत धन इकट्ठा किया, बहुत-सी तिजौरियाँ भरीं लेकिन साथ कुछ भी नहीं ले जाता हूँ। मैंने तो बेवकूफी की लेकिन दूसरे लोग ऐसी बेवकूफी न करें।

दूसरी बात : सारे सेनापति खुले हथियार लेकर मेरे जनाजे के साथ चलें ताकि सबको पता चले कि इतने सेनापति होते हुए कोई भी मुझे मौत से न बचा सका ।

तीसरी बात : राज्य के सारे वैद्य और हकीम मेरे जनाजे के पीछे चलें ताकि लोग समझ सकें कि इतने वैद्य और हकीम भी मुझे मौत से न बचा सके ।

...और चौथी बात : सब तिजौरियों की चाबियाँ खच्चरों पर रखकर मेरे जनाजे के पीछे ले आना ताकि लोगों को पता चले कि इतना सारा खजाना भी मुझे मौत से न बचा सका । इतनी सारी तिजौरियों का मालिक साथ कुछ भी नहीं ले जा रहा है । अतः लोग अपना बहुमूल्य समय अज्ञान में ही न समाप्त करें वरन् किन्हीं ज्ञानी सद्गुरु के चरणों में जाकर आत्मज्ञान के रास्ते पर चलें ।"

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

'आत्मज्ञान जैसा पवित्र करनेवाला जगत में और कुछ भी नहीं है ।' मानो सिकंदर के द्वारा भगवान ने यह संदेश दिलवाया ।

"जब मैं मर जाऊँ तब तुम लोग मेरे दोनों हाथ अर्थी से बाहर रखना ताकि लोगों को पता चले कि मैंने बहुत धन इकट्ठा किया, बहुत-सी तिजौरियाँ भरीं लेकिन साथ कुछ भी नहीं ले जाता हूँ ।"

सिकंदर की मृत्यु हुई और उसे कब्र में गाड़ दिया गया । एक दिन हुआ... माँ के लिए तो एक दिन साल से भी ज्यादा हो गया । दूसरा दिन हुआ... तीसरे दिन की प्रभात हुई और उसकी माँ भागी कब्रिस्तान में । सिकंदर की कब्र के पास जाकर माँ पुकारने लगी :

"बेटा सिकंदर ! उठ। तेरी अभागिन माँ तेरे जैसे लाल के बिना कैसे रह सकती है ? उठ, बेटा ! तूने तो कहा था कि 'मैं कब्रिस्तान में से उठ कर आ जाऊँगा ।' मेरे बहादुर पुत्र ! उठ । लोगों को चकमे में डालनेवाले मेरे बेटे ! उठ... संसार की दौलत इकट्ठी करनेवाले बेटे ! उठ... खजानों के मालिक ! उठ... उठ... उठ..."

माँ पुकारती जाती है किन्तु कोई आवाज न आने पर माँ का धैर्य टूटा और आखिर में जोर से चिल्ला उठी : "तूने कहा था 'मैं आऊँगा...' सिकंदर... सिकंदर... उठ... ।"

माँ के चिल्लाने की आवाज सुनकर कब्रिस्तान के चौकीदार की नींद खुली और वह भागता हुआ आया :

"माई ! क्या है ? क्यों सुबह-सुबह चिल्ला रही है ? किसको बुला रही है ?"

माँ : "मैं अपने सिकंदर बेटे को बुला रही हूँ ।"

चौकीदार ने कहा :

"माई ! ये जितने भी यहाँ सो रहे हैं, वे सब जब जिंदा थे तब अपने-अपने घर और इलाके के सिकंदर थे, कुछ-न-कुछ थे लेकिन कब्रिस्तान सबको मिट्टी में मिला देता है । तू किस सिकंदर को याद कर रही है ?"

"माई ! ये जितने भी यहाँ सो रहे हैं, वे सब जब जिंदा थे तब अपने-अपने घर और इलाके के सिकंदर थे, लेकिन कब्रिस्तान सबको मिट्टी में मिला देता है । तू किस सिकंदर को याद कर रही है ?"

सिकंदर दारा हल्या व्या ।
सोनी लंका वारा हल्या व्या ॥
कारुन खजाने जा मालिक ।
हथें खाली विचारा हल्या व्या ॥

सिकंदर और दारा जैसे चले गये । सोने की लंका थी जिसके पास, ऐसा रावण भी चला गया । अतुलनीय संपत्ति का मालिक कारुन भी चला गया...

कारुन ने तो इतनी संपत्ति, एकत्रित की थी कि उसके राज्य में किसीके पास एक रूपया तक न बचा । जब कारुन ने देखा कि राज्य की सारी संपत्ति उसके पास आ गयी है तो उसने ढिंढोरा पिटवाया कि 'कोई यदि चाँदी का एक रूपया देगा तो मैं उसके साथ अपनी बेटी की शादी करा दूँगा ।'

अब रूपया हो तो कोई दे ।

एक मुसलमान लड़के ने अपनी माँ से कहा :

"माँ ! तू कुछ भी करके मुझे चाँदी का एक रूपया दे दे ।"

माँ : "कारुन का राज्य है । चाँदी का रूपया कहाँ से लायेंगे ?"

बेटा : "माँ ! कुछ भी कर । कहीं से भी एक रूपया ला दे ।"

माँ : "बेटा ! पूरे राज्य में नहीं है तो मैं कहाँ से लाऊँ ?"

बेटे ने जिद पकड़ी कि 'अगर रूपया लाकर नहीं देगी तो मैं खाना नहीं खाऊँगा ।'

एक दिन... दो दिन... तीन दिन... चौथा दिन हुआ तब माँ को लगा कि बेटा भूखा मर जाएगा... क्या करें ? तब उसे कुछ याद आया और उसने बेटे से कहा : "तेरे पिता को मरे अभी कुछ दिन ही हुए हैं । तेरे पिता जब मरे तब, मैंने जो एक रूपया छुपाकर रखा था वह उनके मुँह में डाला था । जा, अपने अब्बाजान की कब्र खोदकर वह रूपया ले ले ।"

बेटे ने अपने बाप की कब्र खोदकर मुर्दे के मुँह से एक रूपया निकाला और कारुन को देकर बोला : "लो यह रूपया और तुम्हारी बेटी की शादी मेरे साथ करा दो ।"

"जब तेरे पिता मरे तब, मैंने जो एक रूपया छुपाकर रखा था वह उनके मुँह में डाला था । जा, अपने अब्बाजान की कब्र खोदकर वह रूपया ले ले ।"

कारुन : "सच बता, तू यह रूपया कहाँ से लाया ? नहीं तो तुझे उल्टा लटकाकर तेरी खाल खिंचवा दूँगा ।"

लड़का बोला : "अपने अब्बाजान की कब्र में से लाया हूँ ।"

कारुन ने तुरंत सब कब्रिस्तानों की कब्रें खुदवायीं और सभी मुर्दों के मुँह से सिक्के निकलवाकर अपने खजाने में जमा कर लिये ।

एक दिन गुरु नानक घूमते-घामते पहुँचे उसके राज्य में और देखा कि इसका अज्ञान बहुत बढ़ गया है और यह अपने को बहुत चतुर समझता है । गुरु नानक ने कारुन बादशाह को एक टका (तीन पैसे) दिया और कहा :

"कारुन ! इस टके को जरा संभालकर रखना । अभी तो मुझे इसकी जरूरत नहीं है और

यहाँ जरूरत पड़ेगी भी नहीं क्योंकि शरीर को आवश्यकतानुसार मुझे प्राप्त हो जाता है । जब तू मर जाये तब परलोक में मेरा यह टका अपने साथ लेते आना ताकि वहाँ यह टका मेरे काम आ सके । मुझे जब जरूरत पड़ेगी तब मैं परलोक में तुझसे माँग लूँगा ।''

> *कारुन ने तुरंत सब कब्रिस्तानों की कब्रें खुदवायीं और सभी मुर्दों के मुँह से सिक्के निकलवाकर अपने खजाने में जमा कर लिये ।*

कारुन : ''वहाँ कैसे ला सकूँगा ?''

नानकजी : ''क्यों नहीं ला सकेगा ? तूने इतना सारा जो खजाना इकट्ठा किया है उसे परलोक में ले जायेगा तब इतने सारे खजाने के साथ मेरा यह एक टका ले जाने में तुझे क्या तकलीफ होगी ?''

> *''तूने इतना सारा जो खजाना इकट्ठा किया है उसे परलोक में ले जायेगा तब इतने सारे खजाने के साथ मेरा यह एक टका ले जाने में तुझे क्या तकलीफ होगी ?''*

कारुन : ''खजाना भी कैसे ले जा सकूँगा ?''

नानकजी : ''कारुन ! जो यहाँ पड़ा रह जायेगा उसको पाने के लिए लोगों को सताता है ? जिसे नहीं ले जाना है उसीको पाने के लिए लोगों को भी तंग करता है और स्वयं भी मुसीबत मोल लेता है ? अरे ! जरा तो समझ ! किसी सच्चे फकीर की शरण में जा । 'मैं बड़ा बादशाह हूँ... खजाने का मालिक हूँ...' इस भ्रम को मिटा ।

अभी अपने-आपको बड़ा चतुर मानता है लेकिन तेरी यह चतुराई तुझे परलोक में जरा भी काम न आयेगी । लोगों के आगे भले तू चतुर दिखे लेकिन खुदा के आगे तो तू बेवकूफ है, महा बेवकूफ । कितनी ही तिजौरियाँ भरीं, कितना ही धन इकट्ठा किया किन्तु जब तक उस अल्लाही नूर का ज्ञान प्राप्त नहीं किया, जब तक असली धन को नहीं पाया तब तक आत्मशांति के बिना, उस अल्लाही नूर के बिना इन्सान अन्धा ही है । किन्हीं समर्थ सद्गुरु के साथ जिसका कोई नाता नहीं है उसका अपने कल्याण के साथ भी कोई नाता नहीं है । उसका कोई सच्चा हितैषी भी नहीं है । अतः बड़े-में-बड़ा जो परमात्मा है उस परमात्मा का ज्ञान पा ले । पहुँच जा किसी सच्चे फकीर के चरणों में, तभी तेरा वास्तविक भला होगा ।''

❀

'ऋषि प्रसाद' के सेवाधारियों के लिए सुअवसर

ऊँचाइयों के शिखरों को स्पर्श करती हुई 'ऋषि प्रसाद' की प्रसार संख्या उत्साहित सेवाधारियों की अनवरत सेवा का प्रताप है । सेवाधारी साधकों का महत्त्व स्वीकारकर 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय ने सेवाधारियों को आकर्षक उपहार देने का निर्णय किया है ।

जिस किसी सेवाधारी द्वारा बनाये गये सदस्यों की संख्या अंक क्रमांक ४३ के लिए १०० या उससे अधिक होगी उन्हें गुरुपूर्णिमा के शुभ पर्व पर विशेष उपहार दिया जाएगा ।

सेवाधारियों के अलावा सुहृदय पाठक भी १०० या उससे अधिक सदस्य बनाकर (जिसमें कम से कम १० आजीवन सदस्य होने चाहिए) इस सुअवसर का लाभ ले सकते हैं ।

जैसी भ

- पूज्यपाद

विचारों की
लिए सोचें चाहे
जैसे विचार क
हो भासता है ।
पापी होने की
खुद को पापी
अगर पुण्यात्मा
करोगे और पु
जाओगे तो
जाओगे । यदि
आधार, साक्षी,
अकर्त्ता, अभोक्

मंत्रे तीर्थे
यादृशीभा

'मंत्र, तीर्थ,
गुरु में जिसकी
सिद्धि प्राप्त हो

अगर आप
भावना करोगे त
दुर्जन में यदि
कि 'नहीं, यह
अगर भगवान की
वहाँ प्रगट हो
भी भगवान की
थे । जो दृढ़तापू

जैसी भावना वैसी सिद्धि

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

विचारों की शक्ति अद्भुत है । आप चाहे अपने लिए सोचें चाहे दूसरों के लिए, लेकिन जिस वक्त जैसे विचार करते हैं, वैसा ही हो भासता है । आप अपने में पापी होने की भावना करोगे तो खुद को पापी मानने लगोगे । अगर पुण्यात्मा होने की भावना करोगे और पुण्य-कर्म करते जाओगे तो पुण्यात्मा हो जाओगे । यदि अपने को सबका आधार, साक्षी, चैतन्यस्वरूप, अकर्त्ता, अभोक्ता मानोगे तो वही रूप हो जाओगे ।

> *जो दृढ़तापूर्वक अपने को स्फुरण से रहित व्यापक ब्रह्म मानते हैं वे अपने व्यापक ब्रह्म-स्वरूप को जान लेते हैं, फिर उन्हें सारा ब्रह्मांड अपने में दिखता है ।*

मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशीर्भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

'मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता,ज्योतिषी, औषध तथा गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है ।'

अगर आप सज्जन आदमी में भी पापी होने की भावना करोगे तो लगेगा कि 'यह तो ऐसा ही है ।' दुर्जन में यदि कुछ गुण देख सकते हो तो लगेगा कि 'नहीं, यह इतना बुरा तो नहीं है ।' कुत्ते में भी अगर भगवान की भावना करोगे तो तुम्हारे लिए भगवान वहाँ प्रगट हो जायेंगे । नामदेव जैसे संत ने कुत्ते में भी भगवान की भावना करके भगवान के दर्शन किये थे । जो दृढ़तापूर्वक अपने को स्फुरण से रहित व्यापक ब्रह्म मानते हैं वे अपने व्यापक ब्रह्म स्वरूप को जान लेते हैं, फिर उन्हें सारा ब्रह्मांड अपने में दिखता है ।

ज्ञानी अपने को शरीर नहीं मानते हैं क्योंकि वे अपने ब्रह्म-स्वभाव में जाग गये हैं । ज्ञानी का चैतन्यवपु अनंत ब्रह्माण्डों में फैला हुआ है । सूर्य, चंद्र, नक्षत्र और आकाशगंगाएँ तो क्या, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, लोक-लोकांतर आदि भी ज्ञानी को अपने में ही भासते हैं । उनके अनुभव का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

देह के साथ जुड़कर मैंने भोग भोगे, योग किया, त्याग किया तप किया, भक्ति की...' ऐसे क्षुद्र अहंकार से ज्ञानी मुक्त हो जाते हैं । ज्ञानियों का अनुभव होता है कि : 'अनंत शरीरों में व्यापक चैतन्य आत्मा मैं ही हूँ । किसी एक शरीर से भोजन मैंने ही किया, दूसरे से राज्य किया, तीसरे से युद्ध किया, चौथे से समाधि की । क्या फर्क पड़ता है ? सब रूपों में मैं ही तो हूँ ।' इसीलिए कहा गया है कि :

ज्ञानी की गत ज्ञानी जाने ।

जो ज्ञानी का व्यवहार देखकर अपनी अक्कल से ज्ञानी को नापने-तौलने बैठता है, वह खतरे में आ जाता है । उसकी खोपड़ी रूपी तराजू संतुलन खो देती है । जो अपने को देह मानता है और ब्रह्मवेत्ता महापुरुष को भी देह मानता है वह विदेही आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता ।

उड़िया बाबा नाम के एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये । उनका एक शिष्य था पलटू । जब उड़िया बाबा देव हो गये तो पलटू रोने लगा : 'गुरुजी ! आपके बिना मुझे कहीं चैन नहीं मिलता है । आपके बिना मेरे दिन नहीं कटते हैं । आपकी प्यारी-प्यारी याद सताती है । आपके दर्शन के बिना मैं नहीं रह सकता । मैं पागल हो जाऊँगा ।'

ऐसा करके पलटू खूब रोता था । दिन को ठीक से खाये-पिये नहीं और रात को सोये नहीं । छः महीने में तो वह पागल जैसा हो गया ।

छः महीने बाद एक रात को स्वप्न में उड़िया बाबा

आये और कहने लगे : ''पलटू ! अब तो पलट ! बारह साल मेरे साथ रहा । मैंने तुझे समझाया कि 'मैं देह नहीं हूँ । तू अपने को भी देह मानता रहा और मुझे भी देह मानता रहा, इसलिए अभी तक रो रहा है । अब भी पलट तो तेरा बेड़ा पार हो जायेगा । पलटू ! पलट ।''

पलटू ने ज्ञानी गुरु की सेवा की थी, सत्संग सुना था अतः उसे गुरुजी की बातें समझ में आ गई। *आत्मज्ञान का सत्संग मिलना यह जप-तप, दान-पुण्य, सेवा-सत्कर्म का फल है । सत्संग सबका राजा है । सत्संग से ही समझ का विकास होता है ।*

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।

ब्रह्मज्ञान का सत्संग सुनते रहने से चित्त में आत्म-स्वरूप को जानने की जिज्ञासा उठती है । आत्मस्वरूप का विचार एवं चिंतन-मनन करने की क्षमता बढ़ती है । 'मैं कौन हूँ ? जगत क्या है ? आत्मा का स्वरूप कैसा है ?'- ये विचार मन में उठते हैं और इस सब बातों का समाधान भी सतसंग में ही मिलता है । जैसे, सब मकान आकाश के आश्रित हैं ऐसे ही सारे लोक-लोकान्तर उस आत्मा के आश्रित हैं । जैसे घड़े का आकाश और महाकाश एक ही है, ऐसे ही तुम्हारा चैतन्य और अनंत ब्रह्माण्ड में फैला हुआ चैतन्य एक ही है । श्रीगुरुगीता में भगवान शंकर ने पार्वतीजी से कहा है :

अपूर्वमपरं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम् ।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ॥
अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम् ।
निःशब्दं तु विजानीयात्स्वभावाद् ब्रह्म पार्वति ॥

'हे पार्वती ! ब्रह्म को स्वभाव से ही अपूर्व, अद्वितीय, नित्य, ज्योतिस्वरूप, निरोग, निर्मल, परम आकाशस्वरूप, अचल, आनंदस्वरूप, अविनाशी, अगम्य, अगोचर, नामरूप से रहित एवं निःशब्द जानना चाहिए ।'

जो ज्ञानी का व्यवहार देखकर अपनी अक्कल से ज्ञानीस को नापने-तौलने बैठता है, वह खतरे में आ जाता है । जो अपने को देह मानता है और ब्रह्मवेत्ता महापुरुष को भी देह मानता है वह विदेही आतमा का अनुभव नहीं कर सकता है ।

इस प्रकार ब्रह्मविचार करने से अपने आनंदस्वरूप आत्मा का रस छलकने लगता है । संसार के पाप-ताप और दुःख, अपने-आप मिटने लगते हैं । *आप जब आत्मज्ञान पा लोगे फिर चाहे बारह मेघ बरसें, चाहे करोड़ों सूर्य तपें, चाहे पुत्र-परिवार, धन-वैभव सब नष्ट हो जायें, फिर भी आपको दुःख नहीं होगा ।*

दुःख होता है भोग की इच्छा से, वासनापूर्ति की अपेक्षा से । भोगों की इच्छा से ही दुर्गुण आने लगते हैं । आदमी में कूटनीति, स्वार्थ, ईर्ष्या, राग-द्वेष, चिन्ता, जलन आदि दुर्गुण पनपने लगते हैं । फिर चिन्ता, जलन को बुझाने के लिए आदमी शराब की प्यालियाँ पीता है जिससे चिन्ता तो नहीं मिटती, जलन तो नहीं बुझती लेकिन ज्ञानतंतु सुन्न हो जाते हैं और बाद में शराब पीनेवाले के क्या हाल होते हैं यह तो दुनिया जानती है । राम-नाम का रस पीनेवाला कैसी मस्ती पा लेता है, वह तो पीनेवाला ही जानता है । इसीलिए कहा गया है :

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा ?
रात बीती सुबह को उतर जायेगी ।
तू हरिनाम की प्यालियाँ पी ले,
तेरी सारी जिंदगी सुधर जायेगी...
सुधर जायेगी...

भोग की इच्छा से दुर्गुण आने लगते हैं और मोक्ष की इच्छा से सद्गुण आने लगते हैं । सहजता, सरलता, सुहृदयता, सहिष्णुता, प्रेम, आनंद, शांति बढ़ने लगती है । कोई इस मुक्ति के मार्ग पर लगा रहे और ज्ञान को उपलब्ध हो जाये तो फिर उसके सान्निध्य मात्र से सबको शांति, आनंद और माधुर्य मिलने लगता है ।

आपको भी परम शांति पाना है तो आत्मज्ञान का अभ्यास करना चाहिए, श्रवण-मनन करना चाहिए ।

जितना-जितना बाहर का चिंतन छूटता जाएगा और आत्मचिंतन बढ़ता जाएगा, उतनी-उतनी शांति बढ़ती जाएगी । यह दोनों एक-दूसरे पर आधारित हैं ।

मनु महाराज ने आत्मज्ञान पा लिया फिर ईक्ष्वाकु राजा को बताया : ''नित्य अंतर्मुख रहो । चित्त में उठनेवाले स्फुरणों का शिकार मत बनो वरन् स्फुरणों के अधिष्ठान में विश्रान्ति पाओ ।''

संसाररूपी कूप है और वासनारूपी रस्सी है । जीव गगरी के समान है जो इच्छा-वासनारूपी रस्सी से बँधकर संसाररूपी कूप में गिरता है । वह कभी ऊपर, कभी नीचे डूबता रहता है, कभी स्वर्ग में तो कभी नर्क में चला जाता है । देह में आसक्ति होती है, देह में अहंता होती है तो जीव नीचे के स्थान में जाता है । 'इतना किया है... इतना करूँगा... यह करूँगा... वह करूँगा...' ऐसे आयोजन करता रहता है और अपने 'प्लानिंग' के मुताबिक नहीं होता है तो दुःखी होता है । कभी 'प्लानिंग' के मुताबिक हो जाता है तो अपने को सुखी मानता है ।

सबके 'प्लानिंग' के अनुसार होने लगेगा तो गड़बड़ी मच जायेगी । यहाँ तो उस परमात्मा की 'सिस्टम' चल रही है । जिस समय जिसके लिए जो होना चाहिए, वह अपने-आप होता रहता है । नरसिंह मेहता ने इसी बात को अपनी भाषा में कहा है :

जे गमे जगतगुरु देव जगदीश ने
ते तणो खरखरो फोक करवो ।
नीपजे नरथी तो कोई नव रहे दुःखी
शत्रु मारीने सौ मित्र राखे ।
राय ने रंक कोई दृष्टि आवे नहीं
भवन पर भवन पर छत्र थाये ।

परमात्मा ने यह शरीर दिया है तो उसके पोषण के लिए भूख-प्यास आप थोड़े ही लगाते हो ? अपने आप लग जाती है । खाये हुए भोजन में से खून आप नहीं बनाते हो, अपने-आप बनता रहता है । सब अपने-आप हो रहा है पर स्फुरणों के साथ जुड़कर नये-नये संकल्प और नये-नये आयोजन बनाते रहते हैं, तभी परेशान हो जाते हैं । 'यह चाहिए... वह चाहिए...' में खप जाते हैं ।

अगर आप संसार-रूपी कूप की गगरी बनना नहीं चाहते हो तो वासनारूपी रस्सी को काटकर मुक्त होने की कला सीख लो । स्फुरणा, संकल्प, इच्छा, वासना को काटते जाओ ।

राजी हैं उसीमें जिसमें तेरी रजा हो ।
हमारी न आरजू है न जुस्तजु है ॥

जिस वक्त जो कर्त्तव्य कर्म करना हो, करते जाओ किन्तु 'मैं करता हूँ' या 'मैंने किया' इस क्षुद्र अहंकार से बचते रहो । जितने-जितने अकर्त्ता-अभोक्ता भाव में स्थित होते जाओगे, उतनी-उतनी चित्त की वृत्तियाँ क्षीण होती जायेंगी । चित्त स्फुरणे के अधिष्ठान में लीन होता जायेगा एवं विश्रांति को पा लेगा ।

अकर्तृत्वं अभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा ।

जितने तुम अपने अकर्त्ता-अभोक्ता भाव में दृढ़तापूर्वक स्थित होते जाओगे, उतने आनंदस्वरूप आत्मा के स्वभाव में जागते जाओगे, सुख-दुःख से परे होते जाओगे ।

श्रीकृष्ण पर स्यमन्तक मणि चुराने का कलंक लगाया गया फिर भी श्रीकृष्ण दुःखी नहीं हुए । सत्यभामा के पिता की मृत्यु हुई तो उदास हुए परन्तु भीतर से दुःखी नहीं हुए । भीतर से ज्यों-के त्यों रहे । श्रीरामजी ने भी बाहर से 'हाय सीते... हाय सीते...' किया किन्तु भीतर से श्रीरामजी ज्यों-के-त्यों रहे । श्रीकृष्ण और श्रीरामजी उस आनंदस्वरूप आत्मा के आश्रय में हैं जो अनंत कोटि ब्रह्माण्ड का अधिष्ठान है और अपना-आपा बनकर सदा सबके साथ है ।

ऐसे ही कबीरजी, नानकजी, एकनाथजी, ज्ञानेश्वरजी, लीलाशाहजी जैसे नामी-अनामी, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध महापुरुष हो गये, जिन्होंने अपने अन्तर्यामी राम का आश्रय लिया तो सुखी-दुःखी दिखते हुए भी, सुख-दुःख से पार अपने आनंदस्वभाव में जाग गये थे । वही सर्वाधार, सबका आश्रय, चैतन्य परमात्मा, अंतर्यामी आत्मा के रूप में आपके पास भी उतने-का-उतना है । वही आपका सच्चा स्वरूप है । आप भी उसके आश्रित हो जाओगे तो सुखी-दुःखी दिखते हुए भी सुख-दुःख से परे हो जाओगे...

ॐ... ॐ... ॐ...

वर्षा ऋतु में आहार-विहार

वर्षा ऋतु तीन प्रमुख ऋतुओं में से एक है । दोषों के संचय, शमन और प्रकोपवाले सिद्धान्त के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में संचित वायु इस ऋतु में कुपित हो जाती है । अत: इस ऋतु में गैस, अपचन, पेट के रोग व वात रोग विशेष रूप से होते हैं ।

आयुर्वेद में कहा है :

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ।

वात, पित्त, कफ इन दोषों की सम अवस्था का नाम ही आरोग्यता तथा इनकी विषम अवस्था को विकार अथवा रोग कहा गया है ।

अत: शरीर को निरोग रखने के लिये वात, पित्त, कफ साम्य अवस्था में रहें, ऐसा उचित आहार-विहार करना चाहिये ।

वर्षा के प्रारंभिक काल में अपनी पाचनशक्ति का विशेष ध्यान रखें जिससे वात का और ज्यादा प्रकोप न हो । आहार में रूखे, कसैले, बासे, कच्चे और अन्य वातकारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये । इस ऋतु में वात की वृद्धि होने के कारण उसे शान्त करने के लिये मधुर, अम्ल व लवण-रसयुक्त, हल्के व शीघ्र पचनेवाले व वात का शमन करनेवाले पदार्थों व व्यंजनों से युक्त आहार लेना चाहिये । सब्जियों में परमल, लौकी, भिण्डी हितकर है ।

इस ऋतु में विशेष ध्यान जल की स्वच्छता पर दें । जल द्वारा उत्पन्न होनेवाले उदर-विकार, अतिसार, प्रवाहिका एवं हैजा जैसी बीमारियों से बचने के लिये जल को उबालकर ठंडा करके पीना सर्वश्रेष्ठ उपाय है । पीने और स्नान के लिये गन्दे पानी का प्रयोग बिल्कुल न करें क्योंकि गन्दे पानी के सेवन से उदर व त्वचा संबंधी व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं ।

जल को उबालकर प्रयोग करने से अनेकों व्याधियों से बचाव होता है ।

इस ऋतु में दिन में सोना व रात्रि में देर तक जागरण करना विशेष हानि करता है । इस ऋतु में वातावरण में नमी रहने के कारण शरीर की त्वचा ठीक से सूखती नहीं । अत: त्वचा स्वच्छ, सूखी व स्निग्ध बनी रहे इसका उपाय करें ताकि त्वचा के रोग पैदा न हों । इस ऋतु में घरों के आस-पास गन्दा पानी इकट्ठा न होने दें जिससे मच्छरों से बचाव हो सके ।

इस ऋतु में त्वचा रोग, मलेरिया, टायफाइड व पेट के रोग अधिक होते हैं । अत: खाने-पीने की सभी वस्तुओं पर कड़ी नजर रखें व साफ करके ही प्रयोग करें ।

बाजार के दही व लस्सी का सेवन न करें । घर का जमा हुआ ताजा दही व उसकी बनी लस्सी का सेवन करें ।

❀

वर्षा ऋतु में उपयोगी : करेला

शरीर के स्वस्थ एवं निरोग रहने के लिए छहों रस उचित मात्रा में अनिवार्य हैं । युक्त और संतुलित आहार में खट्टे, खारे, तीखे, कसैले और मीठे रस की जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही कड़वे रस की भी आवश्यकता होती है ।

करेले का स्वाद तो कड़वा होता है परंतु यह अनेक गुणों को अपने भीतर संजोये हुए है । कड़वा रस करेले की मुख्य विशेषता है । अधिकतर भारत में सभी स्थानों पर करेले की खेती की जाती है । अधिकांशत: सब्जी बनाते समय करेले की कड़ुआहट कम करने के लिए उसकी छाल को निकाल दिया जाता है या उसे काटकर नमक के पानी में डाला जाता है जिससे कि उसका कड़ुआपन कम हो जाय । लेकिन ऐसा करने से उसके कड़ुएपन के साथ ही साथ उसकी गुणवत्ता भी कम हो जाती है ।

करेले के मौसम में अधिक-से-अधिक करेले का

सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है । करेला शीतल, हल्का, वायु न करनेवाला है व शौच साफ लाता है । छोटे करेले अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले एवं हल्के होते हैं । बड़े करेलों की अपेक्षा छोटे करेले अधिक गुणकारी होते हैं । आहार की दृष्टि से करेले का साग पथ्य है । इसकी बेल को करेली एवं फल को करेला कहते हैं ।

यह यकृत व रक्त के लिए विशेष उपयोगी है । बड़े करेलों की अपेक्षा छोटे करेलों में लोह का अंश बहुतायत में होता है । करेले में विटामिन 'सी' अल्प मात्रा में एवं विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में होता है । इसका निरंतर सेवन करने से बुखार, चेचक एवं खसरे से बचाव होता है ।

● करेले के पत्तों के रस का सेवन करने से पित्तनाश होता है । वमन, विरेचन व पित्त-प्रकोप में इसके पत्तों के रस में सेंधानमक मिलाकर देने से फायदा होता है ।

● करेली के पत्तों का रस व हल्दी मिलाकर पीने से चेचक के रोग में फायदा होता है ।

● ५०-६० ग्राम करेली के पत्तों के रस में चुटकी भर हींग मिलाकर देने से पेशाब बहुतायत से होता है और पेशाब की रुकावट की तकलीफ दूर होती है ।

● करेली के पत्ते मूत्रल हैं, ज्वर एवं कृमि का नाश करनेवाले हैं ।

● बुखार व सूजन में करेले का साग लाभप्रद है ।

● आमवात, यकृत-प्लीहा की वृद्धि एवं जीर्ण त्वचा रोग में भी करेले की सब्जी लाभकारी है ।

● *प्रतिदिन सुबह करेले का रस लेने से मधुमेह (डायबिटिज) के रोगी को विशेष लाभ होता है ।*

● *करेलों के टुकड़े करके, छाया में सुखाकर बारीक पीसकर, १०-१० ग्राम चूर्ण सुबह-शाम तीन-चार महीने तक सेवन करने से मधुमेह अवश्य मिटता है ।*

● खुजली और फुन्सियों में करेले के मूल को पीसकर लेप लगाने से फायदा होता है ।

● पुराने त्वचा रोग में करेले के पत्तों को पीसकर उसकी मालिश करने से बहुत लाभ होता है ।

● गर्म पानी के साथ करेले के पत्तों का रस देने से कृमि का नाश होता है ।

● अम्लपित में : इस रोग में यदि भोजन करते ही वमन हो जाता हो तो करेले के फूल या पत्तों को घी में भूनकर खाने से लाभ होता है । उसमें हल्का-सा नमक भी मिला सकते हैं ।

❀

मन को शांत करने के उपाय

किसी भी प्रकार की व्याधि होने पर उस व्याधि की औषधि के साथ-साथ मन को भी शांत करने के प्रयास करने चाहिये । वर्त्तमान समय में बहुत सारे रोगों का कारण अशांत मन है । स्वप्नदोष, श्वेतप्रदर, अनियमित मासिक धर्म, ब्लड प्रेशर, डायबिटिज, दमा, जठर में अल्सर, मंदाग्नि, एसीडीटी, अतिसार, डीप्रेशन, अपस्मार, मिर्गी, उन्माद (पागलपन) और स्मरण शक्ति का ह्रास जैसे अनेक रोगों का कारण मन की अशांति ही है ।

चित्त (मन) में संकल्प-विकल्प बढ़ते हैं तो चित्त अशांत रहता है, जिससे प्राणों का तालमेल (प्राणों की रिधम) अच्छा नहीं रहता और यही कारण है अनेक कार्यों में हमारी असफलता का ।

हमारे देश के ब्रह्मवेत्ता, जीवन्मुक्त संतों ने मन को शांत करने के विभिन्न उपाय बतलाये हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख, चुनिन्दा उपाय हम 'ऋषि प्रसाद' के पाठकों के लिये यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं । हमें विश्वास है कि जिज्ञासु साधक इन पर अवश्य ही अमल करेंगे ।

१. मन को वश में करने के लिये, शांत करने के लिये सर्वप्रथम आहार पर नियंत्रण होना अत्यावश्यक है । जैसा अन्न होता है, हमारी मानसिकता का निर्माण भी वैसा ही होता है । इसलिये सात्त्विक, शुद्ध आहार का सेवन करना अनिवार्य है । अधिक भोजन करने से अपचन की स्थिति निर्मित होती है जिससे नाड़ियों में कच्चा रस 'आम' बहता है, जो हमारे मन के संकल्प-विकल्पों में वृद्धि करता है । फलत: मन की अशांति में वृद्धि होती है । अतैव भूख से कम आहार लेवें । भोजन समय पर करें । रात को जितना हो

सके, अल्पाहार लें । तला हुआ, पचने में भारी व वायुनाशक आहार के सेवन से सदैव बचना चाहिये । साधक को चाहिये कि वह कब्ज का निवारण करके सदा ही पेट साफ रखें ।

२. भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है :

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।

अभ्यास और वैराग्य से मन शांत होता है । वैराग्य दृढ़ बनाने के लिये इन्द्रियों का अनावश्यक उपयोग न करें, अनावश्यक दर्शन-श्रवण से बचें । समाचार पत्रों की व्यर्थ बातों व टी.वी., रेडियो या अन्य बातों में मन न लगावें । ब्रह्मचर्य का दृढ़ता से अधिकाधिक पालन करें ।

३. इन्द्रियों का स्वामी मन है और मन का स्वामी प्राण है । प्राण जितने अधिक सूक्ष्म होंगे, मन उतना ही अधिक शांत रहेगा । प्राण सूक्ष्म बनाने के लिये नियमित आसन-प्राणायाम करें । पद्मासन, सिद्धासन, पादपश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, मयूरासन, ताड़ासन, वज्रासन एवं अन्यान्य आसनों का नियमित अभ्यास स्वास्थ्य और एकाग्रता के लिए हितकारी है, सहायक है । आसन-प्राणायाम के २५-३० मिनट बाद ही किसी आहार अथवा पेय पदार्थ का सेवन करें । आसन-प्राणायाम का अभ्यास खाली पेट ही करें । अथवा, भोजन के तीन चार घंटे के बाद ही करें । प्राणायाम का अभ्यास आरंभ में अनुभवनिष्ठ किसी योगी महापुरुष के चरणों में बैठकर करना चाहिये ।

४. सुखासन, पद्मासन या सिद्धासन पर बैठकर श्वासोच्छ्वास की गिनती करें । इसमें न तो श्वास गहरा लेना है और न ही रोकना है । केवल जो श्वास चल रहा है, उसे गिनना है । श्वास की गणना कुछ ऐसे करें :

श्वास अंदर जाय तो 'राम...' बाहर निकले तो एक... श्वास अंदर जाय तो 'आनंद... बाहर निकले तो दो... श्वास अंदर जाय तो 'शांति... बाहर निकले तो तीन... इस प्रकार करते हुए शांत होते जायेंगे । इस तरह की गणना जितनी अधिक करेंगे, उतना अधिक लाभ होगा ।

५. मन को वश में करने का अगला उपाय है त्राटक । अपने इष्टदेव अथवा सद्गुरु की तस्वीर को एकटक देखने का अभ्यास बढ़ावें । फिर आँखें बन्द कर उसी चित्र का भ्रूमध्य में अथवा कंठ में ध्यान करें ।

६. मंत्रजाप का अधिक अभ्यास करें । वर्ष में एक-दो जपानुष्ठान करें तथा पवित्र आश्रम, पवित्र स्थान में थोड़े दिन निवास करें ।

७. मन की शांति अनेक जन्मों के पुण्यों का फल है अतैव जाने-अनजाने में हुए अपराधों के बदले में सद्गुरु-भगवान की तस्वीर अपने पास रखकर प्रायश्चित्तपूर्वक उनसे क्षमा माँगना एवं शांत हो जाना भी एक चिकित्सा है ।

८. आत्मचिन्तन करते हुए देहाध्यास को मिटाते रहें । जैसे कि 'मैं आत्मस्वरूप हूँ... तन्दुरुस्त हूँ... मुझे कोई रोग नहीं है । बीमार तो शरीर है । काम, क्रोध जैसे विकार तो मन में हैं । मैं शरीर नहीं, मन नहीं, निर्विकारी आत्मा हूँ । हरि ॐ... आनन्द... आनन्द... ।'

हर रोज प्रसन्न रहने का अभ्यास करें । किसी बंद कमरे में जोर से हँसने और सीटी बजाने का अभ्यास करें ।

उपरोक्त आठ बातों का जो मनुष्य दृढ़तापूर्वक पालन करता है वह निश्चय ही अपने मन को पूर्ण वश में कर लेता है । आप भी अपने मन पर वशीकरण करते हुए अपने जीवन में उक्त नियमों का पालन करते हुए अपना जीवन उन्नत बनाइये ।

खास सूचना

इस बार गुरुपूनम के पर्व पर फल-फूल-मेवा-मिठाई-कपड़े-लत्ते आदि कुछ भी स्वीकार नहीं किया जायेगा । मंडप में बैठे-बैठे ही सामूहिक दर्शन एवं मानसिक पूजन होगा । अधिक से अधिक समय सत्संग एवं ध्यान में व्यतीत हो ऐसी व्यवस्था आयोजित हो रही है । अतः चीज-वस्तुएँ लायें नहीं ।

योग
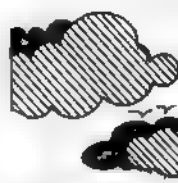
'...और मे

सन् १९९३
पूज्यश्री का स
(सागवाड़ा, राज.)
नौकरी उदयपुर जि
घर से १३० कि. म
नहीं हो रहा था । मैंने
होकर करुण-गाथ
लेकिन कोई भी
समझने के लिए तै
मैंने कुछ नेताओं
चक्कर काटे मगर
हाथ लगी ।
मेरे पिताश्री
बहुत ही प्रगाढ़ है ।
पर मेरे पिताश्री ब
थे क्योंकि मेरी आँ
है । एक दिन रात
के आगे खड़े होकर
जैसे समर्थ गुरु का
रहा है, गुरुदेव !
रात्रि को पूज्य
और कहा : "जा,
सुबह पिताजी
नहीं किया, फिर भ
ऑफिस गया तो मेरे
पर मेरा ट्रॉंस्फर-अ
गया ! मेरे मुँह से

सब घट मेरा सांईया, खाली घट ना कोय ।
बलिहारी वा घट की, जा घट प्रगट होय ॥

- *शैलेश एस. जोशी*
दीवड़ा छोटा, डुंगरपुर (राज.)

❀

'...और मेरा ट्राँस्फर हो गया'

सन् १९९३ की यह घटना है ।

पूज्यश्री का सत्संग-शिविर गौरेश्वर आश्रम, दीवड़ा (सागवाड़ा, राज.) में चल रहा था । उन दिनों मेरी नौकरी उदयपुर जिले के पाटिया गाँव में थी, जो मेरे घर से १३० कि. मी. दूर है । वहाँ से मेरा स्थानांतरण नहीं हो रहा था । मैंने उच्चाधिकारियों के समक्ष उपस्थित होकर करुण-गाथाएँ गायीं, कई जगह नाक रगड़ा लेकिन कोई भी मेरी मजबूरी समझने के लिए तैयार न था । मैंने कुछ नेताओं के पास भी चक्कर काटे मगर निराशा ही हाथ लगी ।

मेरे पिताश्री की गुरुभक्ति बहुत ही प्रगाढ़ है । मेरी हालत पर मेरे पिताश्री बहुत चिन्तित थे क्योंकि मेरी आँखों की रोशनी भी बहुत कमजोर है । एक दिन रात को पिताजी ने गुरुजी की मूर्ति के आगे खड़े होकर मेरे बारे में विनती की : "आप जैसे समर्थ गुरु का सहारा है फिर भी मेरा बच्चा भटक रहा है, गुरुदेव ! कुछ रास्ता बतायें ।"

> *रात्रि को पूज्य गुरुदेव पिताजी के स्वप्न में आये और कहा : "जा, तेरे बच्चे का ट्राँस्फर हो गया ।"*

रात्रि को पूज्य गुरुदेव पिताजी के स्वप्न में आये और कहा : "जा, तेरे बच्चे का ट्राँस्फर हो गया ।"

सुबह पिताजी ने जब मुझे बताया तब मैंने यकीन नहीं किया, फिर भी पिताजी द्वारा जोर देने पर मैं ऑफिस गया तो मेरे जिला शिक्षा-अधिकारी के टेबल पर मेरा ट्राँस्फर-आर्डर पड़ा था । मैं स्तब्ध-सा रह गया ! मेरे मुँह से अनायास ही निकल पड़ा :

गुरुदेव ने जीवनदान दिया...

इस दुनिया में गुरु तो जगह-जगह पर मिल जाते हैं लेकिन सद्गुरु का मिलना बहुत मुश्किल है । मैंने समर्थ सद्गुरु की बहुत खोज की परन्तु मुझे निराशा ही हाथ लगी ।

इसी आशा-निराशा के झूले में झूलते हुए मैं मंदिरों में, संकीर्तन में जाती रही कि अचानक एक दिन दूरदर्शन पर प्रसारित परम पूज्य आसारामजी बापू के प्रवचन सुने । सुनते ही ऐसा लगा मानो मुझे मेरी मंजिल मिल गई है । सहसा मन में आशा की एक किरण फूट पड़ी । फिर पूज्य बापू का जितना सत्साहित्य पढ़ती एवं कैसेट सुनती, उतना ही उत्साह बढ़ता जाता ।

दिल्ली में स्थित पूज्य गुरुदेव के आश्रम में जब प्रथम बार गई तब पू. गुरुदेव के दिव्य दर्शन पाने का सौभाग्य मिला । क्या नूरानी नूर आँखों से झलक रहा था ! काफी समय तक ऐसे ही एकटक देखती रही, तभी एक तेजोमय किरण उधर से आयी और मेरी आँखों में समा गई । मैं अपनेमें न रह सकी । ऐसी परम शांति... परम तृप्ति का अनुभव हो रहा था ।

जिसे खोजती थी युगों से उसे आज पाया है ।
धन्य हुआ यह मानव जीवन सद्गुरुदेव की ही माया है ॥

फिर तो हर समय पूज्य गुरुदेव की इस कृपामयी वृष्टि में सराबोर रहती ।

...लेकिन अभी तो मेरी श्रद्धा व निष्ठा की परीक्षा होनी बाकी थी । वह समय भी नजदीक आया । दिनांक : २७ नवम्बर, १९९५ को मेरे ३५ वर्षीय दामाद अनुराग गुप्ता को भारी हार्टअटैक हुआ । ऐसी गंभीर अवस्था में ही उन्हें National Heart Institute में दाखिल करवाया गया । उनकी ऐसी गंभीर अवस्था

देखकर I.C.C.U. में रखा गया ।

दो दिन बाद तो स्वास्थ्य और बिगड़ता चला गया । २९ नवम्बर, १९९५ को ऑक्सीजन देते हुए, अर्धमूर्च्छित अवस्था में उनको सीताराम भारती इन्स्टीट्युट में ले गये । मेरी आस्था डोल उठी । उन सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी को मन-ही-मन प्रार्थना की कि : ''गुरुदेव ! मेरे दामाद को जीवनदान दे दो । मझधार में फँसी इस नैया को अब तो आप ही पार लगा सकते हो ।''

मन-ही-मन गुरुगीता के ३८वें श्लोक का स्मरण किया :

शरीरमिन्द्रियप्राणमर्थस्वजनबान्धवान् ।
आत्मदारादिकं सर्वं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥

'अपने शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, धन, कुटुम्बीजन, नाते-रिश्तेदार, पत्नी आदि सब श्री गुरुदेव को अर्पण करना चाहिए ।'

...और मैंने गुरुदेव को दामाद अर्पित कर दिया । उसी समय डॉक्टर को श्वेत वस्त्रधारी पूज्य गुरुदेव के साक्षात् दर्शन हुए, जैसे वे कह रहे हों कि : ''निश्चिन्त रहो । सब ठीक हो जायेगा ।'' मेरी बेटी से भी कहा : ''अनुराग को कुछ नहीं होगा ।''

जब वहाँ से उपचार के बाद वापस लाया गया तो डॉक्टर कभी अस्थमा, कभी हार्ट-अटैक तो कभी एलर्जी बताकर इलाज करते रहे । अंत में हारकर उन्हें दिनांक [illegible]-[illegible]-९५ को ऑल इण्डिया मेडिकल साइंस में I.C.C.U. में हृदय-कक्ष विभाग में रखा गया । सबसे अधिक आश्चर्य तो सभी को यहीं हुआ जब यहाँ पर डॉक्टर को समझ में ही नहीं आ रहा था कि इनको आखिर रोग कौन-सा है ? डॉक्टरों ने सभी परीक्षण किये : E. C. G. ? ठीक । ब्लॅड टेस्ट ? ठीक । कुछ भी तो नहीं था !

अनुराग तथा उनके संबंधियों को अभी-भी डॉक्टर की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था । वे कहने लगे कि डॉक्टर सही ढंग से इलाज नहीं कर रहे हैं लेकिन स्थूल रूप से पूज्य गुरुदेव की इस करुणा-कृपा का दीदार करके मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा था । मैं अपने-आप में नहीं समा रही थी ।

...किन्तु परीक्षा की घड़ियाँ अभी समाप्त नहीं हुई थीं । दिनांक : ५ दिसम्बर को फिर से उनकी हालत बिगड़ गयी, तब डॉक्टरों ने परीक्षण करके बताया कि : ''इनकी Coronary में Clot है । It's very dangerous. हो सकता है कि बाई-पास सर्जरी करनी पड़े ।''

मेरे सिर पर तो मानो पहाड़-सा गिरा । फिर भी धैर्य व पूज्य गुरुदेव में विश्वास रखते हुए श्रद्धा-भक्ति सहित गुरुवंदना की एवं श्रीआसारामायण का पाठ किया । जप-ध्यान में अधिक समय दिया । दिनांक : ७-१२-९५ को 'एन्जोग्राम' के लिए ले जा रहे थे तब मैंने मन-ही-मन अहोभाव से पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना की : 'हे मेरे गुरुदेव !

मेरा तो कुछ है नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपती, क्या लागत है मोर ॥

लगभग एक घण्टे के परीक्षण के बाद डॉक्टर ने आकर बताया : ''Cath Test में कुछ भी नहीं निकला है और Artery तथा Heart में किसी भी प्रकार का Clot नहीं है ।''

''...और मैंने गुरुदेव को दामाद अर्पित कर दिया । उसी समय डॉक्टर को श्वेत वस्त्रधारी पूज्य गुरुदेव के साक्षात् दर्शन हुए, जैसे वे कह रहे हों कि : ''निश्चिन्त रहो । सब ठीक हो जायेगा । अनुराग को कुछ नहीं होगा ।''

डॉक्टर चकित थे एवं परिवार के सभी लोग विस्फारित नेत्रों से एक-दूसरे की ओर देख रहे थे । मेरे मन में अपार आनंद व शांति का सागर हिलोरे ले रहा था : 'गुरुदेव ! आपने मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया...'

सभी ने पूज्यश्री की इस अनुकम्पा को शत-शत नमन कर अपने मन को पवित्र किया । अन्त में मैं बस, इतना ही कहूँगी कि :

जो बात दवा से नहीं होती वह दुआ से होती है ।
जब कोई मिल जायें ऐसे सच्चे संत तो बात खुदा से होती है ॥

- श्रीमती शान्ता शर्मा
९/९८, नेहरु नगर, नई दिल्ली ।

संस्था समाचार

हरिद्वार : उत्तराखंड क्षेत्र के हरिद्वार पंतद्वीप में पतितपावनी भागीरथी, माँ गंगा के पावन तट पर, दिनांक : ३० मई से २ जून तक आयोजित हुए 'ध्यान योग साधना शिविर' व विशाल सत्संग-समारोह में लाखों धर्मप्रेमी श्रद्धालुओं ने पूज्य बापू की, आत्मानंद को छूकर आती हुई अनुभव-संपन्न अमृतवाणी का लाभ लेकर अपने को पावन किया । शिविर का आयोजन दिनांक ३० मई से था लेकिन भारत-भर के कोने-कोने से दिनांक २९ मई को ही हजारों की तादाद में भक्तजन शिविर में भाग लेने हेतु हरिद्वार पहुँच चुके थे ।

शिविर के दूसरे दिन ही शिविरार्थियों की बढ़ौतरी के कारण सत्संग-पाण्डाल छोटा पड़ चुका था, फलस्वरूप हजारों लोगों ने सत्संग-पाण्डाल के बाहर बैठकर ही पूज्यश्री की अमृतमयी वाणी का रसपान किया ।

पूज्य बापूजी ने इस अवसर पर ज्ञानमयी अमृत-वर्षा करते हुए कहा कि :

"खोने का भय, पाने का लोभ व पा जाने पर उसका हर्ष, पद-प्रतिष्ठा का मद, अधिकार का गुमान और अनित्य वस्तुओं से प्रेम- ये जहाँ से उठते हैं उस शाश्वत का ध्यान लगाकर परम शांति में गोता मारो । फिर तुम्हें संसार की अनित्य वस्तुओं में उसी चेतन तत्त्व के अनुभव होंगे । वहाँ ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, जन्म-मरण, सबका लय हो जायेगा । ऐसी स्थिति में यदि कोई तुम्हारे लिए लांछन भी लगाये तो वे सब बातें तुम्हारे लिए महत्त्वहीन हो जायेंगी ।"

ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापू ने निष्कामता व भक्ति का विवेचन करते हुए कहा :

"निष्काम भक्ति सर्वोपरि है । संसार में इन नश्वर भोग-पदार्थों से सुख लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए अपितु सबको सुख देनेवाले उस सुखस्वरूप परमात्मा में गोता मारने से तुम स्वतः सुखरूप हो जाओगे ।"

उन्होंने आगे कहा : *"ऐसी व्यक्तिगत कामनाएँ, आवश्यकताएँ नहीं बढ़ानी चाहिए, जिनसे उद्वेग-अशांति होने लगती है । परम शांति के मूल उस परम तत्त्व से नेह लगाते ही जीवात्मा सारे मानसिक दुःखों का अंत कर परम विश्रांति पाने लगता है । समस्त वृत्तियों का उद्‌गम एवं अंत परम विश्रांति में ही है अतः ऐसे काम करो जिससे हृदय में बैठे हुए राम में आराम पा सको ।"*

पू. बापू ने मनमानी भक्ति को भय का कारण बताते हुए कहा :

"आज कल लोग सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति हेतु देवी-देवताओं की भक्ति करते हैं । इसी कारण उनके हृदय में उस परम तत्त्व का अनुभव न होकर देवता के रुष्ट होने का भय या उनको प्रसन्न करने की भावना बनी रहती है ।"

पूज्यश्री ने अपनी पीयूषवर्षी वाणी में कहा :

"मन की दो धाराएँ होती हैं : मुख्य एवं सामान्य । अपने मन की मुख्य धारा को उस परमात्म-तत्त्व के चिंतन-मनन में लगायें तो सामान्य धारा से संसार के सभी कार्य ठीक होते चले जायेंगे ।"

गुरु-शिष्य के विषय में बताते हुए पूज्यश्री ने कहा :

"सच्चा गुरु अपने शिष्य को दबाता नहीं, उभारता है । आज के भ्रमित व दिशाहीन वातावरण से उबरने के लिए अत्यंत सावधानी की आवश्यकता है । मानव की आलोचना एवं लांछन की प्रवृत्ति उसे नर-पिशाच बनाती जा रही है । लेकिन ऐसी प्रवृत्तियों से घबराने की आवश्यकता नहीं है और न ही इनको अधिक महत्त्व देकर चित्त को मलिन करने की ।"

हजारों शिविरार्थियों व भक्तजनों ने पूज्य गुरुदेव की इस स्नेह-सरिता में नहाकर अपने साधन-भजन में, नियम-निष्ठा में अमृतप्रेम का, एक अलौकिक आनंद का अनुभव किया ।

दिनांक १ जून को पंजाब के राज्यपाल लेफ्टिनेन्ट जनरल के. एन. छिब्बर, डी. आई. जी. विक्रमसिंह एवं हरिद्वार के जिलाधिकारी श्री केसरवानी सहित अनेक अधिकारियों ने साधना-शिविर में भाग लिया । राज्यपाल महोदय ने पूज्य बापू का माल्यार्पण द्वारा अभिनंदन करके आशीर्वाद प्राप्त किया ।

इसी दिन पूज्य बापू के वे हजारों पूनम-व्रतधारी भक्त भी इस 'ध्यान योग साधना शिविर में सम्मिलित हुए जो प्रतिमास इस अवसर पर पूज्यश्री के

दर्शन के बाद ही अन्न-जल ग्रहण करते हैं। इस अनूठे समागम से सारा वातावरण आनंदमय, शांतिमय व हरिमय हो गया था।

इस आयोजनकाल में सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का था कि सत्संग-शुभारंभ के प्रथम दिन से पहले तक सत्संग-स्थल पर धूल से भरी गर्म हवाएँ चल रही थीं। बाहर से आनेवाले शिविरार्थी ऐसा वातावरण देखकर कहते थे कि 'यहाँ पर पूज्य बापू का सत्संग कैसे हो पायेगा?' लेकिन सभी साधक पूज्य बापू की कृपा को ही आधार मानकर व्यवस्थायें जुटाने में लगे रहे।

दिनांक : २९ मई की रात्रि को सारा आकाश मेघाच्छन्न हो गया और शुरू हो गई रिमझिम-रिमझिम बारिश। सारा वातावरण शीतल व शांत हो गया। धूल भरी गर्म हवाओं का कहीं कुछ अता-पता न था। दूसरे दिन सुबह सत्संग का प्रथम सत्र शुरू हुआ। पूज्य गुरुदेव व्यासपीठ पर विराजमान हुए व अपनी हृदयस्पर्शी वाणी से शिविरार्थियों के हृदयों को पावन किया। दिनांक : २ जून को पूज्य गुरुदेव ने शंखनाद करके सत्संग की पूर्णाहुति की। इन सत्संग के चार दिनों में कोई भी, किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं आया। यह सब पूज्य गुरुदेव की लीला नहीं तो और क्या है?

इस अवसर पर कई जाने-माने महंतों एवं मंडलेश्वरों ने भी पूज्यश्री के सत्संगामृत का पान लिया।

पू. बापू के आगामी सत्संग कार्यक्रम

गुरुपूर्णिमा महोत्सव

१. इन्दौर आश्रम में दिनांक : २६, २७ जुलाई १९९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, खंड़वा रोड, बिलावली तालाब के पास, कस्तुरबा ग्राम, इन्दौर (म. प्र.) फोन : ४७८०३१, ६३०६८.

२. दिल्ली आश्रम में दिनांक : २८, २९ जुलाई १९९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, रवीन्द्र रंगशाला के सामने, अपर रिज रोड़, न्यू दिल्ली-६०. फोन : ५७२९३३८

३. अहमदाबाद आश्रम में दिनांक : ३०, ३१ जुलाई १९९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-५. फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों एवं एजेन्ट बन्धुओं से अनुरोध

(१) कृपया ध्यान दें : गत अंक ४० से द्विमासिक संस्करण का सदस्य शुल्क लेना बंद किया गया है। 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता के लिए नये सदस्यता शुल्क के अनुसार भेजे गये मनीऑर्डर/ड्राफ्ट ही स्वीकार किये जाएँगे, पुरानी दर के नहीं। सदस्यता शुल्क के नये दर इस प्रकार हैं : भारत, नेपाल व भूटान में वार्षिक : रू. ५०. आजीवन : रू. ५००

(२) अपनी सदस्यता का नवीनीकरण कराते समय मनीऑर्डर फार्म पर 'संदेश के स्थान' पर 'ऋषि प्रसाद' के लिफाफे पर आया हुआ आपके पते वाला लेबल चिपका दें। (३) 'पाने वाले का पता' में 'ऋषि प्रसाद सदस्यता हेतु' अवश्य लिखें। (४) पते में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सूचना प्रकाशन तिथि से एक माह पूर्व भिजवावें अन्यथा परिवर्तन अगले अंक से प्रभावी होगा। (५) जिन सदस्यों को पोस्ट द्वारा अंक मिलता है उनको विनंती है कि अगर आपको अंक समय पर प्राप्त न हो तो पहले अपनी नजदीकवाली पोस्ट ऑफिस में ही पूछताछ करें। क्योंकि अहमदाबाद कार्यालय से सभी को समय पर ही अंक पोस्ट किये जाते हैं। पोस्ट ऑफिस में तलास करने पर भी अंक न मिले तो उस महीने की २० तारीख के बाद अहमदाबाद कार्यालय को जानकारी दें। (६) 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय से पत्रव्यवहार करते समय कार्यालय के पते के ऊपर के स्थान में संबंधित विभाग का नाम अवश्य लिखें। ये विभिन्न विभाग इस प्रकार हैं :

(A) अनुभव, गीत, कविता, भजन, संस्था समाचार, फोटोग्राफ्स एवं अन्य प्रकाशन योग्य सामग्री 'सम्पादक- ऋषि प्रसाद' के पते पर प्रेषित करें। **(B)** पत्रिका न मिलने तथा पते में परिवर्तन हेतु 'व्यवस्थापक-ऋषि प्रसाद' के पते पर संपर्क करें। **(C)** साहित्य, चूर्ण, कैसेट आदि प्राप्ति हेतु 'श्री योग वेदान्त सेवा समिति के पते पर संपर्क करें। **(D)** साधना संबंधी मार्गदर्शन हेतु 'साधक विभाग' पर लिखें। **(E)** स्थानीय समिति की मासिक रिपोर्ट, सत्प्रवृत्ति संचालन की जानकारी एवं समिति से संबंधित समस्त कार्यों के लिये 'अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति' के पते पर लिखें। **(F)** स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त प्रकार के पत्रव्यवहार 'वैद्यराज, सांई लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहाँगीरपुरा, सूरत (गुजरात) के पते पर करें। (७) आप जो राशि भेजें वह इन विभागों के मुताबिक अलग-अलग मनीऑर्डर या ड्राफ्ट से ही भेजें। अलग-अलग विभाग की राशि एक ही मनीऑर्डर या ड्राफ्ट में कभी न भेजें।

निकल पड़े हैं, अब तो हम स
गुरु सन्देश सुनाने को
अब तो भैया कर ले सुमि
नहीं समय पछताने को
नन्दूरबार (महा.) में संकीर्तनय

'गुरुदेव! तुम्हारे चरणों
हम नित निल शीष झुका
हैं... सुन्दर प्रेरणा पा
हैं...' पूज्यश्री की वन्द
करके संकीर्तनयात्रा क
शुभारंभ करते हुए न
वाड़ज (अहमदाबाद) क
भक्तवृंद।

डीसा (गुज.) में पूज
पर्व पर निकाली गई

संत श्री आसारामजी नारी उत्थान आश्रम की साध्वी से संयम, सदाचार और साहस की प्रेरणा पाती भाग्यशाली कन्याएँ।

निकल पड़े हैं अब तो हम सब गुरु सन्देश सुनाने को... अब तो भैया कर ले सुमिरन नहीं समय पछताने को... नन्दूरबार (महा.) में संकीर्तनयात्रा

'गुरुदेव! तुम्हारे चरणों में हम नित नित शीष झुकाते हैं... सुन्दर प्रेरणा पाते हैं...' पूज्यश्री की वन्दना करके संकीर्तनयात्रा का शुभारंभ करते हुए नवा वाड़ज (अहमदाबाद) का भक्तवृंद।

हरि संकीर्तनयात्रा पूर्ण भई... गौरेश्वर, संत श्री आसारामजी धाम में।

जब-जब गुरु की याद सताती है पैर यूँ ही बढ़ जाते हैं। (सरी गाम, वापी, गुज.)

डीसा (गुज.) में पूज्य बापूजी के जन्म-महोत्सव के पावन पर्व पर निकाली गई कलश के साथ हरि संकीर्तन यात्रा...

दमोह में संकीर्तनयात्रा में झूमते झुमाते हरिनाम के दीवाने।

सपरिवार सत्संग सुनने आये हुए पंजाब के राज्यपाल लेफ्टनेंट जनरल श्री के. एन. छिब्बर पुष्पमालाओं से पूज्य बापू का भावपूर्ण अभिवादन करते हुए...

आर. एस. एस. के सरसंघचालक श्री रज्जू भैया दर्शनार्थ पधारे दिल्ली के आश्रम में...

हरिद्वार में भागीरथी-गंगा के पावन तट पर विशाल सत्संग समारोह में पूज्य बापू का गगन भेदी शंखनाद व पूज्य बापू के मुखारविन्द से प्रस्फुटित गीता-ज्ञानामृत में सराबोर देश के कोने-कोने से आया हुआ विशाल जन समूह।

REGISTERED WITH R.N.I. UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT : AHMEDABAD PSO LICENCE NO. 207 Regd. NO. GAMC/1132, BOMBAY, BYCULLA PSO LICENCE NO. 1. Regd. NO. MH/MNV-01